विश्वामित्र के राम

भाग–1

(राम–कथा पर आधारित उपन्यास)

श्रीराम सिंह

विश्वामित्र के राम

(राम–कथा पर आधारित उपन्यास)

Vishwamitra Ke Ram
ISBN 978-81-936815-2-7
ASVS

ISBN : 978-81-936815-2-7
Writer: DR. ShreeRam Singh
Edition: First, April 2018
Price : 350/-
Copy Right: Writer
Printer : Neha Printers Offset,
Ballia (U.P.) India
Mob.: 9839458229

Contact:
DR. ShreeRam Singh
E-1264 Omaxe City,
near B.R. Ambedkar University
Raibarely Road, Lucknow (U.P.)
Cell Phone : 09451191600

प्रकाशक, प्रकाशन एवं वितरक
आर्यावर्त शोध विकास संस्थान
हरपुर नई बस्ती, बलिया–277001 (उ0प्र0)
सेलफोन– 9616423071 / 8353962219
ई–मेल– aaryvart2013@gmail.com,rksharpur1974@gmail.com
वेबसाइट– www.aryavartsvs.com

Vishwamitra Ke Ram
'A novel based on Ram-Katha' by : DR. Shreeram Singh

पुण्य सलिला सुरसरि एवं सरयू
की गोद में अवस्थित
महर्षि भृगु की उस पावन धरा
को
सादर समर्पित...

- जहाँ मर्यादा पुरुषोत्तम राम के पग पड़े,
- जहाँ का कण–कण शिव है,
- जिसके सपूतों ने धर्म, साहित्य और राजनीति के क्षेत्र में अविजित कीर्तिमानों का इतिहास रचा,
- जो जीवनदायिनी, शक्तिदायिनी एवं मुक्तिदायिनी है,
- जो वीर–प्रसूता क्रांतिभूमि है,

और,

- जो सदा सदा से प्रणम्य है...

प्रथम खण्ड

विश्वामित्र के राम

राज-सभा की कार्यवाही प्रारम्भ होने वाली थी। मंत्रिपरिषद् के सभी सदस्य यथास्थान बैठ गये थे। प्रधान सेनापति अपने उपसेनापतियों के साथ स्थान ग्रहण कर चुके थे। राजसिंहासन के दाहिने पार्श्व में राजगुरु वशिष्ठ एवं वामपार्श्व में मुनि वामदेव अपनी अपनी शिष्य मण्डली के साथ बैठ गये थे। सामने सभा-भवन के अन्तिम छोर तक विभिन्न क्षेत्रों के सामंत एवं विशिष्ट जन-प्रतिनिधि अपने अपने आसन पर बैठ चुके थे। चारों ओर नीरवता एवं शान्ति थी। सभी महाराज दशरथ के पहुँचने की प्रतीक्षा कर रहे थे।

अचानक ऊँचे स्वर में द्वारपाल ने सूचना दी, 'चक्रवर्ती सम्राट, सूर्यवंश के गौरव महाराज दशरथ राजसभा में पधार रहे हैं।'

राज-सभा के सभी सदस्य अपने अपने स्थान पर खड़े हो गये।

महाराज दशरथ सभाकक्ष में प्रविष्ट हुए। गुरु वशिष्ठ को प्रणाम कर आशीर्वाद प्राप्त किये एवं सुसज्जित भव्य राजसिंहासन पर आरूढ़ हो गये।

राजा दशरथ का मुखमण्डल दमक रहा था। मन में आज कई दिनों से बार बार आ रहे विचार पर राज-सभा में विमर्श एवं उसकी सहमति की प्रत्याशा थी। उन्होंने राज-सभा में चारो ओर अपनी दृष्टि दौड़ाई। सभी उत्सुकतापूर्वक उनके संदेश की प्रतीक्षा कर रहे थे। राजा दशरथ की आँखें अन्ततः राजगुरु वशिष्ठ पर आकर टिक गईं। गुरु वशिष्ठ ने ही पूछा, 'महाराज आपके मुखमण्डल पर छाई प्रसन्नता किसी शुभ संदेश का संकेत दे रही है।'

हाँ मुनिश्रेष्ठ, आज कई दिनों से मेरे मन में यह विचार आ रहा है कि राम का ब्रह्मचर्याश्रम समाप्त हो गया है। उसकी आयु पच्चीस वर्ष की हो गई है, मैं समझता हूँ कि वह विवाह के सर्वथा योग्य हो गया है।

राज-सभा हर्षध्वनि से गूँज उठी। सभी के सहमति की यह ध्वनि थी।

'आप अत्यन्त उचित कह रहे हैं महाराज दशरथ। मेरे मन में भी कई दिनों से यही विचार आ रहा था। राम की आयु विवाह के सर्वथा अनुकूल हो गई है। मेरे विचार से राम का विवाह सूर्यवंश की प्रतिष्ठा के अनुरूप किसी राजपरिवार की सुयोग्य कन्या के साथ हो जाना चाहिए।'

राजगुरु की सहमति से राजसभा में पुनः हर्ष की लहर दौड़ पड़ी। सभी सदस्यों का मुखमण्डल प्रसन्नता से दमकने लगा।

अचानक गुरु वशिष्ठ का ध्यान उस प्रतिहारी की ओर गया जो कोई आवश्यक सूचना देने के लिए व्यग्रता से प्रतीक्षा कर रहा था।

आज्ञा प्राप्त होते ही उसने निवेदन किया, 'महाराज! आगन्तुक कक्ष में बैठे महर्षि विश्वामित्र अपनी शिष्य मण्डली के साथ आपसे मिलने की इच्छा व्यक्त कर रहे हैं।'

राजसभा में सन्नाटा छा गया। महाराज दशरथ एवं मंत्रिपरिषद् के सभी सदस्य सशंकित हो उठे, महर्षि विश्वामित्र का अयोध्या आगमन अकारण नही होगा।

राजा दशरथ सिंहासन छोड़ उठ खड़े हुए, फिर मंत्रिपरिषद् के सदस्यों के साथ आगन्तुक कक्ष की ओर तेज गति से चल दिये।

ब्रह्मर्षि के चरणों में सिर झुकाकर प्रणाम करते हुए सविनय कहा 'आपका स्वागत है मुनिवर, आपने स्वयं इतना कष्ट क्यों किया, यदि सूचना मिल गई होती तो मैं स्वयं आपकी सेवा में उपस्थित हो जाता?'

'महाराज दशरथ, काम ही कुछ ऐसा था कि जिसके निमित्त मेरा स्वयं का आना आवश्यक था।'

'मुनिश्रेष्ठ! आप थके होंगे, अतएव पहले अतिथिगृह में विश्राम करने की कृपा करें।'

'हाँ महाराज, अब कल ही मैं अपने आने का प्रयोजन बताऊँगा।'

दूसरे दिन राज-सभा में महर्षि विश्वामित्र के प्रवेश करते ही प्रतीक्षारत राजा दशरथ एवं सभा में बैठे हुए सभी विशिष्टजनों ने खड़े होकर महर्षि का अभिवादन किया। गुरु वशिष्ठ के समकक्ष आसन पर बैठाते हुए दशरथ ने हाथ जोड़कर कहा, 'मुनिवर राज-सभा में पधारकर एवं अपनी सेवा का अवसर देकर आपने अयोध्यावासियों को कृतार्थ किया है। कृपा कर अपने यहाँ आने का प्रयोजन बतावें देव!'।

'महाराज, आप कुशल से तो हैं?'

'हाँ मुनिश्रेष्ठ! आप गुरुओं की कृपा से सब उत्तम है।'

'महाराज दशरथ! मैं अयोध्या राज्य की शासन-व्यवस्था से संबंधित कुछ अप्रिय किन्तु सत्य एवं वास्तविक संदेश देने आया हूँ। लगता है, प्रजाजनों के संबंध में आपको सही जानकारी नहीं मिल रही है।'

'क्या कोई विशेष घटना हुई है मुनिवर?' दशरथ गम्भीर होकर बोले।

'महाराज दशरथ! कोई एक घटना नहीं है। वस्तुतः कोसलराज की सम्पूर्ण शासन-व्यवस्था छिन्न-भिन्न हो गई है। लोगों के अन्दर शासन का कोई भय नहीं रह गया है। राक्षसों के उपद्रव से न केवल कोसल राज्य में वरन् पूरे आर्यावर्त में त्राहि-त्राहि मची है। वे न केवल सामान्य जनजीवन को असम्भव बना दिये हैं बल्कि ऋषि-मुनियों को भी यज्ञ एवं तपस्या से विरत रहने के लिए बाध्य कर रहे हैं। मेरे सिद्धाश्रम में भी सभी तपस्वी आतंकित हैं। यज्ञ पूरे नहीं हो पा रहे हैं। यज्ञों के हवनकुण्ड में राक्षस पशुओं और मनुष्यों का माँस फेंककर नाना प्रकार से विघ्न डाल रहे हैं। सत्य एवं धर्म का क्षरण हो रहा है। जनता आतंकित एवं भयाक्रान्त है। राजा का धर्म होता है कि वह समाज को सुरक्षा प्रदान कर भयमुक्त रखे। ऋषि-मुनियों द्वारा किये जा रहे यज्ञ एवं अन्य धार्मिक अनुष्ठान निर्विघ्न पूरे हों। किन्तु ऐसा नहीं हो रहा है राजन्!।'

आश्चर्यचकित महाराज दशरथ ने बीच में ही टोकते हुए कहा, 'मुनिवर, सिद्धाश्रम के पास ही कोसल राज्य की सीमा पर शासन-व्यवस्था के लिए सेना की एक टुकड़ी सेनापति के साथ नियुक्त की गई है। क्या सेना सामान्यजन को सुरक्षा प्रदान नहीं करती है? हे मुनिश्रेष्ठ! मेरे पास इस तरह की कुव्यवस्था की कोई सूचना नहीं है।'

महाराज दशरथ! आपका सेनापति स्वयं अत्याचारी है और सदैव प्रमादरत रहता है। राक्षसों से बचाने की बात तो बहुत दूर की है, वह तो स्वयं प्रजाजनों पर अत्याचार करता है। वह रक्षक नहीं, भक्षक है। सच पूछिए राजन् तो आर्यावर्त की राज्य व्यवस्थाएँ राक्षसों से भिड़ने से कतरा रही हैं। यदि किसी राज्य ने साहस भी किया तो राक्षस एक राज्य से दूसरे राज्य की सीमा में चले जाते हैं। विभिन्न राज्यों में एकता नहीं, परस्पर द्वेष एवं ईर्ष्या है। सभी एक दूसरे को अपमानित करने में ही गौरव की अनुभूति कर रहे हैं। हमारे पूर्वजों ने आर्य-संस्कृति के उत्कर्ष एवं विस्तार का जो सपना देखा था, उसका पराभव हो रहा है महाराज दशरथ।

आश्चर्यचकित महाराज दशरथ को उत्तर देने के लिए शब्द नहीं मिल रहे थे। आँखें नीची किये महर्षि की बातों को सुनने के सिवा कोई विकल्प नहीं था।

मुनि की आँखों में क्रोध की लालिमा आ गई थी। क्षणिक विश्राम के बाद वे पुनः बोलने लगे- 'राक्षसों से केवल ऋषि-मुनि एवं आर्य ही नहीं प्रताड़ित हो रहे हैं राजन्, बल्कि आर्येत्तर जातियाँ- शबर, किरात, निषाद, बानर, ऋक्ष,

कोल, भील भी पीड़ित एवं आतंकित हैं। अंधेरा होने के पहले ही सभी अपने घरों के भीतर दुबक जाते हैं क्योंकि राक्षस न केवल उन्हें नाना प्रकार से प्रताड़ित करते हैं बल्कि उनकी हत्या करने में भी संकोच नहीं करते। प्रजा को असहाय और असुरक्षित छोड़ देना, राजधर्म की मान्य परम्पराओं के अनुरूप नहीं बल्कि जनआंकाक्षाओं के विपरीत है, राजधर्म में निहित कर्त्तव्यों के विरूद्ध है राजा दशरथ।'

राज-सभा में सन्नाटा छा गया। ब्रह्मर्षि के प्रत्येक शब्द में सत्य और न्याय की गूँज थी। प्रतिकार का साहस किसी के पास नहीं था।

'मुझे क्या आदेश है मुनिश्रेष्ठ?' अचानक राजा दशरथ की ध्वनि से सन्नाटा भंग हुआ।

'आदेश नहीं राजन! इस संकट के निवारण हेतु मैं आपसे कुछ माँगने आया हूँ लेकिन माँगने के पहले आपके वचनवद्ध होने का आकांक्षी हूँ राजन।' ब्रह्मर्षि की वाणी सहसा कोमल हो गई थी।

दशरथ भी सहज हो गये। तत्काल निवेदन किया 'आज्ञा करें देव, मैं वचन देता हूँ कि आप जो माँगेगे, उसे मैं तन, मन, धन एवं पूरी निष्ठा से पूरा करूँगा। आपके आदेश का पालन होगा मुनिवर!'।

'दशरथ का दिया वचन भंग नहीं होगा मुनिवर, आप आज्ञा करें।'

'महाराज दशरथ! मैं सिद्धाश्रम में अपने यज्ञ के विधिपूर्वक निर्विघ्न समापन हेतु आपके पुत्र राम को कुछ समय के लिए अपने साथ ले जाना चाहता हूँ।'

महर्षि की इस माँग से पूरे दरबार में सन्नाटा छा गया। सभी एक दूसरे को अवाक् दृष्टि से ऐसे देखने लगे मानों विश्वामित्र पूरे कोसल राज्य को माँग रहे हैं।

'क्या कह रहे हैं मुनिवर! निर्दयी राक्षसों से लड़ने के लिए राम को ले जाना चाहते हैं? राम अभी अनुभवहीन सुकुमार नवयुवक है। वह अकेले राक्षसों से कैसे लड़ सकता है? यह तो उसके साथ अन्याय होगा मुनिवर'। किंकर्तव्यविमूढ़ दशरथ रुँधे कंठ से किसी प्रकार कह सके। उनकी आँखों के सामने अंधेरा छा गया था, वह होश गँवा बैठे थे।

'यह कैसी माँग हैं मुनिश्रेष्ठ?'

'आपके उत्तर की प्रतीक्षा कर रहा हूँ महाराज दशरथ'। सहसा विश्वामित्र की वाणी कठोर हो गई थी।

'हे मुनिश्रेष्ठ! राक्षसों से युद्ध करने के लिए मुझे आज्ञा दें। राज्य की पूरी सेना के साथ मैं आपके आश्रम में चलकर आपके यज्ञ की रक्षा करूँगा। विघ्न डालने वाले राक्षसों का संहार कर उनका समूल विनाश कर दूँगा। राम ने शस्त्र विद्या अवश्य सीखी है किन्तु राक्षसों से युद्ध करने का अनुभव और कौशल नहीं है उसके पास। वह राक्षसों का सामना कैसे कर पायेगा? कृपा कर राम को इस कार्य से विरत कर दीजिए मुनिवर'। दशरथ की वाणी में विनम्रता थी, याचना थी।

महर्षि की त्यौरियाँ चढ़ गई। दशरथ को घूरते हुए बोले 'बहुत जल्दी वचन दे दिया था राजन और अब वचन भंग करने का बहाना खोज रहे हैं, वाक्पटुता दिखा रहे हैं। यह सत्य है कि आप एक महान योद्धा रहे हैं। देवासुर संग्राम में आपने जो कौशल और वीरता दिखाई उसकी कीर्तिगाथा जनजीवन में आज भी व्याप्त है किन्तु महाराज, यह बीते दिनों की बात है। उस युद्ध के बाद न तो आप और न, ही आपकी सेना अयोध्या नगरी से बाहर गई है। शस्त्रविद्या और युद्ध कौशल की निपुणता अनवरत अभ्यास माँगती है महाराज। आप और आपकी सेना को तो जंग लग गया है। प्रजा को आपने भगवान भरोसे छोड़ा है।'

'अपनी आयु के इस मोड़ पर आप शारीरिक रूप से क्षीण और युद्ध भूमि के लिए सर्वथा अनुपयुक्त हो गये हैं राजा दशरथ। चपल, बलशाली और युद्धकला में पारंगत राक्षसों से युद्ध जीतना आपके वश की बात नहीं है।'

मुनि की वाणी से अवाक् राज-सभा के सदस्यों को कोई उत्तर नहीं सूझ रहा था।

अपमान से आहत राजा दशरथ की पलकें फिर झुक गईं, वाणी अवरूद्ध हो गई।

सन्नाटे को भंग करते विश्वामित्र ही पुनः बोले, 'महाराज दशरथ, लगता है यहाँ आकर मैंने भूल की है। आप अपने राजकुमार को अपने पास रखिए। प्रजा की रक्षा और मुनियों के आयोजित यज्ञों को निरापद बनाने के लिए, यह विश्वामित्र कोई न कोई व्यवस्था कर ही लेगा। अब मैं चलता हूँ।'

'ठहरिए ब्रह्मर्षि! लौटने में इतनी शीघ्रता मत कीजिए। महाराज दशरथ गृहस्थ जीवन में हैं। उनका पुत्रमोह सर्वथा स्वाभाविक है। अचानक एवं अनपेक्षित आये आपके प्रस्ताव पर महाराज दशरथ किंकर्त्तव्यविमूढ़ एवं संज्ञाशून्य हो गये हैं। उन्हें प्रस्ताव पर शांतिपूर्वक विचार के लिए समय नहीं मिला है। अतएव आज विचार के लिए समय दें। प्रस्ताव पर सम्यक् विचार के बाद कल आपको सूचना दी जायेगी। आज आप अतिथि गृह में विश्राम करें ब्रह्मर्षि।' राजगुरु वशिष्ठ

की वाणी से सहसा राज-सभा में चेतना लौटी।

'आप उचित कह रहे है राजगुरु! किन्तु कल तक अवश्य निर्णय हो जाना चाहिए। व्याकुल प्रजाजनों, ऋषि-मुनियों एवं तपस्वियों की पीड़ा एवं उनके असुरक्षित जीवन की कल्पना आप सहज ही कर सकते हैं। सिद्धाश्रम के आतंकित और पीड़ित तपस्वी जो मुझे यहाँ आने के लिए अनवरत प्रेरित कर रहे थे, वे अब मेरे शीघ्र लौटने की प्रतीक्षा कर रहे होंगे क्योंकि मेरी अनुपस्थिति में वे राक्षसों के उत्पीड़न को सहने के लिए अभिशप्त हैं।'

महर्षि विश्वामित्र अतिथि गृह की ओर बढ़ चले।

महर्षि के अतिथि गृह में जाने के बाद, राज-सभा चेतन अवस्था में आई किन्तु सभी अवाक् एक-दूसरे का मुँह देख रहे थे। राजा दशरथ की बेचैनी छिपाये नहीं छिप रही थी। वे बार-बार अपनी बचनबद्धता को कोस रहे थे, पश्चाताप की आग से ऊबर नहीं पा रहे थे।

अन्ततः नीरवता भंग हुई। शान्त, प्रज्ञाशून्य राज-सभा के मौन को तोड़ते हुए राजगुरु वशिष्ठ ने कहा, 'महाराज आप चेतन अवस्था में आवें। ऐसे ही समय में किसी के विवेक, धैर्य और साहस की परीक्षा होती है। यह सत्य है कि आप चार यशस्वी पुत्रों के पिता हैं, किन्तु राजधर्म में सभी प्रजाजनों को पुत्र के समान ही मानने का विधान है। ब्रह्मर्षि विश्वामित्र, प्रजाजनों एवं ऋषि-मुनियों पर राक्षसों द्वारा नित्य प्रति हो रहे अत्याचारों से अत्यन्त व्यथित हैं। उनकी वाणी में अतिश्योक्ति नहीं, सत्य की पीड़ा है। सहायता के लिए राजा के पास आना स्वाभाविक है। हमें उनकी माँग पर शांतिपूर्वक एवं धैर्य से विचार करना चाहिए और वह भी अतिशीघ्र क्योंकि विलम्ब उन्हें स्वीकार नहीं होगा। इसके साथ ही एक बात और स्पष्ट करना चाहता हूँ, बिना संतुष्ट हुए ब्रह्मर्षि का लौटना भी विपत्ति को आमंत्रण देने के समान होगा।'

'गुरुदेव आप सत्य कह रहे हैं किन्तु मेरी समझ में नहीं आता कि महर्षि विश्वामित्र राक्षसों के संहार के लिए कोसल की पूरी सेना को अक्षम बता रहे हैं। यह भी मेरी समझ से परे है कि जिस कार्य को मैं और मेरी पूरी सेना नहीं कर सकती उसे राम जैसा सुकुमार, अनुभवहीन नवयुवक कैसे कर सकता है? क्या यह ब्रह्मर्षि की अनुचित माँग नहीं है? क्या वे मेरे पुत्र की सुरक्षा की जिम्मेवारी ले सकते हैं? मेरा मन शंकित हो रहा है गुरुदेव! कहीं कोई षड़यंत्र तो नहीं हो रहा है? निर्दयी, क्रूर और बलशाली राक्षसों पर विजय पाना अत्यन्त दुरूह कार्य है। मेरे पुत्र का जीवन संकट में पड़ जायेगा गुरुदेव!।'

'महाराज दशरथ! ब्रह्मर्षि विश्वामित्र इस युग के महानतम् धनुर्धर हैं। उनकी योग्यता, उनकी नियति एवं निष्ठा पर अविश्वास नहीं किया जा सकता, वे निर्विवाद हैं। आर्य संस्कृति का प्रचार प्रसार ही उनके जीवन का लक्ष्य हो गया है। वे अनार्यों को भी सभ्य, सुसंस्कृत एवं आर्य संस्कृति से परिष्कृत करना चाहते हैं। इसमें सबसे बड़ा बाधक राक्षस समाज ही है, जो आज भी कच्चे माँस का भक्षण करता है और माँस के लिए पशुओं तथा मनुष्यों में भेद नहीं रखता। प्रजाजन राक्षसों के उत्पीड़न से त्रस्त एवं भयाक्रान्त हैं। राक्षसों पर प्रभावी नियंत्रण समय की माँग है। विश्वामित्र की माँग अनुचित नहीं है राजन, उस पर विचार किया ही जाना चाहिए।'

'एक परामर्श और देना चाहता हूँ महाराज, यदि हम राम को भेजने में असमर्थता व्यक्त करते हैं तो विश्वामित्र यह काम किसी दूसरे से भी करा सकते हैं और उस स्थिति में इनके कोप का सामना करने में कोसल राज्य को बड़ी कीमत चुकानी पड़ सकती है। मैं तो स्वयं भुक्तभोगी हूँ। ब्रह्मर्षि के सामर्थ्य से पूरी तरह परिचित हूँ और आप भी अनभिज्ञ नहीं हैं महाराज। सम्भव है, राजकुमार राम की संभावनाओं को देखकर विश्वामित्र किसी योजना के परिप्रेक्ष्य में ही राम को ले जाना चाहते हैं। वे भविष्यद्रष्टा हैं, युद्धकला में पारंगत है, दिव्यास्त्रों के ध ाारक और कुशल संचालक हैं और निश्चित रूप से आर्यों के परमहितैषी एवं आर्य संस्कृति के अन्यतम् पोषक हैं। उन पर किसी प्रकार का अविश्वास नहीं किया जा सकता।'

'मेरी अन्तर्आत्मा कहती है महाराज कि राम का ब्रह्मर्षि के साथ जाना अत्यन्त शुभ एवं कल्याणकारी होगा, इतिहास सृजन का नूतन आधार बनेगा। मुझे अपनी कल्पनाप्रसूत एक और सम्भावना की अनुभूति हो रही है महाराज। विश्वामित्र के निर्देशन में राम को शस्त्र विद्या में अकल्पनीय श्रेष्ठता और महारत मिल सकती है; साथ ही व्यावहारिक रणकौशल की कला और सम्भव है दिव्यास्त्रों का दुर्लभ ज्ञान भी प्राप्त हो सकेगा। मैं महर्षि विश्वामित्र के आगमन को एक विपत्ति नहीं बल्कि एक अवसर के रूप में देख रहा हूँ महाराज दशरथ।'

मुनि वशिष्ठ के तर्कों ने महाराज दशरथ एवं समस्त मंत्रिपरिषद् के सदस्यों को न केवल निरूत्तर कर दिया बल्कि सोच की दिशा बदल दी, सम्भावनाओं का नया द्वार खोल दिया।

लम्बी अवधि तक विचार विमर्श का क्रम चलता रहा और अन्ततः राम को कुछ समय के लिए महर्षि विश्वामित्र के साथ सिद्धाश्रम भेजने का निर्णय

ले लिया गया। तदनुसार महर्षि को सूचना देने के लिए राज-सभा में आमंत्रित किया गया।

महर्षि की व्यग्रता समाप्त हुई। वे दूत के साथ ही राजसभा में पहुँच गये।

महाराज दशरथ ने विनयपूर्वक निवेदन किया 'मुनिवर! अधेड़ावस्था में मुझे चार पुत्रों का पिता बनने का सौभाग्य एवं गौरव मिला है। अपने पुत्र मुझे प्राणों से भी प्रिय हैं, किन्तु आपके आग्रह एवं कोसल राज्य के हित में मैंने अपने पुत्र राम को आपको सौंपने का निर्णय ले लिया है मुनिश्रेष्ठ। मेरा अनुरोध है कि मेरे राम को पुत्रवत् शिष्य के रूप में स्वीकार करेंगे। आपसे यह भी वचन लेने का आकांक्षी हूँ कि आप स्वयं उसकी रक्षा करेंगे एवं कार्य सम्पादित हो जाने के बाद उसे सकुशल मुझे लौटा देंगे।

महर्षि आश्वस्त हुए। उनके मुखमण्डल पर स्नेह एवं संतोष का भाव आया फिर मुस्कराते हुए कहा, 'ऐसा ही होगा महाराज दशरथ।'

[2]

विद्युतगति से यह समाचार पूरी अयोध्या में फैल गया। सभी उदास, चिन्ताग्रस्त और सबके मन में व्यग्रता एवं व्याकुलता; पता नहीं क्या होने वाला है? राम तो अयोध्या के कण कण में बसते हैं, राम के बिना तो अयोध्या की कल्पना भी नहीं की जा सकती, राम अयोध्या की आत्मा हैं, कोसल के भविष्य हैं।

नगरवासी घरों से बाहर राजपथ पर, वीथिकाओं में उमड़ पड़े। चर्चाओं में व्यस्त किन्तु सभी व्यग्रता से इस समाचार का विश्लेषण अपने अपने ढंग से कर रहे थे लेकिन निष्कर्ष पर एक राय नहीं बन रही थी। कुतूहल बस एक ही था और वह भी सबके मन में कि महर्षि विश्वामित्र ने अपने यज्ञ की रक्षा एवं राक्षसों से संघर्ष के निमित्त स्वयं कोसल नरेश महाराज दशरथ और कोसल की सम्पूर्ण सेना को अस्वीकार कर राम को ही ले जाने का आग्रह क्यों किया? क्या राम का पराक्रम, राम का शौर्य और राम का रणकौशल सब पर भारी पड़ रहा है? महाधनुर्धर, त्रिकालदर्शी महर्षि विश्वामित्र के सामर्थ्य आकलन में तो कोई भूल नहीं हो सकती है।

कौसल्या के शयन कक्ष से बाहर खड़ी दासी इस समाचार से सन्न रह गई। बिना आज्ञा के ही शयन-कक्ष के भीतर पहुँचकर 'महारानी! महारानी!!' चिल्लाने लगी। महारानी अवाक् रह गईं और किसी अशुभ समाचार की शंका से

भयभीत होकर पूछा, 'क्या समाचार है अनु? तुम इतना घबराई क्यों हो? मुझे शीघ्र बताओ।'

'महारानी जी! अभी अभी एक दासी से यह समाचार मिला है'... वह हकलाने लगी, कण्ठ अवरूद्ध हो गया।

'क्या समाचार मिला है, मुझे शीघ्र बताओ अनु।'

'महारानी जी! मुनिवर विश्वामित्र राक्षसों से अपने यज्ञ की रक्षा के लिए राजकुमार राम को माँगने आये थे और अपने महाराज ने उन्हें युवराज को अपने साथ ले जाने की अनुमति प्रदान कर दी है।'

कौसल्या की आँखों के सामने अन्धेरा छा गया। वह बदहवाश चिल्ला उठीं 'यह क्या कह रही हो अनु, मुनि विश्वामित्र मेरे राम को राक्षसों से युद्ध करने के लिए ले जा रहे हैं? और वह भी अकेला। यह तो मेरे पुत्र के साथ घोर अन्याय होगा। जिन राक्षसों से युद्ध लड़ने में बड़े-बड़े राजा और शूरवीर अपनी सेनाओं के साथ भी भय से काँपते हैं, युद्ध के लिए साहस नहीं जुटा पाते, उनसे लड़ने के लिए मेरे राम को अकेले विश्वामित्र ले जा रहे हैं और महराज ने आज्ञा भी दे दी है, यह कैसा अविवेकपूर्ण निर्णय है। क्या मेरे राम को अयोध्या के दृश्य-पटल से सदैव के लिए हटाने का षड़यंत्र तो नहीं चल रहा है? यह मेरे पुत्र और मेरे साथ क्या हो रहा है भगवान? क्या मेरी तरह ही मेरे पुत्र को भी उपेक्षा और तिरस्कार का दंश आजीवन सहना पड़ेगा...?

... और कौसल्या की आँखों से अविरल अश्रुधार फूट पड़ी। कितनी असहाय, उपेक्षित और निर्बल है वह? निर्णय लेने के पूर्व महाराज ने उससे पूछ लेने तक की नैतिकता नहीं निभाई।

सुमित्रा को यह समाचार पुत्र लक्ष्मण से ही मिला। लक्ष्मण इस समाचार को सुनने के बाद दौड़ता हुआ माता के पास पहुँचा था। उसकी वाणी में आवेश और तिलमिलाहट थी, 'माँ राम भइया के साथ मैं भी वन जाऊँगा, राम भइया के बिना मैं अयोध्या में अकेले नहीं रह पाऊँगा, सुमित्रा ने पूरी बात ध ैर्यपूर्वक सुनी। फिर विचार मग्न हो गई, उसे आश्चर्य हुआ महर्षि विश्वामित्र की माँग पर। वह राम को बिना सेना के ताड़का वन ले जाना चाहते हैं, अपने यज्ञ की रक्षा के लिए। कितना विश्वास है मुनि को राम और राम के सामर्थ्य पर; लेकिन 'राम' अकेले नहीं जायेगा, राम के साथ लक्ष्मण होगा?

'माँ तुमने कुछ बताया नहीं, मुझे आज्ञा दो माँ। तुम तो सदैव कहती रही हो कि लक्ष्मण, तुम राम की साया हो, जहाँ राम वहीं लक्ष्मण। मैं हर

परिस्थिति में भइया राम के साथ ही रहूँगा 'माँ'।'

'आज्ञा है पुत्र लक्ष्मण। महर्षि विश्वामित्र के यज्ञ की रक्षा राम और लक्ष्मण दोनों भाई मिलकर करेंगे।'

सुमित्रा को अकस्मात् कौसल्या का ध्यान आया। वह शीघ्रता से महारानी कौसल्या के कक्ष की ओर चल पड़ी।

अस्त-व्यस्त, आँसुओं में डूबी, निराश कौसल्या को देखकर सुमित्रा सिहर उठी। उसका भी आत्मबल कमजोर पड़ने लगा, धैर्य टूटने लगा। वह सोचने लगी 'महाराज दशरथ की अनवरत उपेक्षा से पीड़ित महारानी अब तो बिल्कुल ही टूट जायेंगी, लेकिन नहीं, सुमित्रा ऐसा नहीं होने देगी।'

सुमित्रा संयमित हो गई। आदरपूर्वक बोली 'बहन कौसल्या, इस समाचार से अयोध्या का जन जन दुखी है, आप धैर्य रखें। हम लोग क्षत्रिय हैं और क्षत्रिय के लिए अन्याय के विरूद्ध संघर्ष और युद्ध तो उसके जीवन का अटूट हिस्सा है। हमें धैर्यपूर्वक इस स्थिति का सामना करना होगा।'

सुमित्रा को निकट देखकर कौसल्या की पीड़ा और घनीभूत हो गई, धैर्य टूट गया और वह फूट-फूटकर रोने लगी।

'यह तो ठीक है सुमित्रा' कौसल्या ने सिसक-सिसक कर कहा, 'किन्तु मेरे भाग्य में क्या यही सब होना है? कितनी विचित्र और विचलित करने वाली बात है कि महर्षि विश्वामित्र राक्षसों से युद्ध करने के लिए, कोसल की पूरी सेना को अस्वीकार कर केवल राम को ले जा रहे हैं। राम युद्ध के लिए अपरिपक्व और अनुभवहीन हैं। जिन राक्षसों से युद्ध लड़ने के लिए कोई आर्यसम्राट अपनी पूरी सेना के साथ साहस नहीं कर पाता है उनसे अकेला राम कैसे जीत सकता है? उसके प्राणों पर संकट है सुमित्रा। मुझे तो ऐसा लग रहा है कि राम के विरूद्ध कोई षड़यंत्र रचा गया है और मुनि विश्वामित्र उस षड़यंत्र के हिस्सा बन गये हैं। मैं किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो गई हूँ सुमित्रा। क्या करूँ, कैसे संतोष करूँ, मैं समझ नहीं पा रही हूँ।

'नहीं बहन कौसल्या! आप ऐसा मत सोचें। महर्षि विश्वामित्र अन्य ऋषियों से सर्वथा भिन्न हैं। उन्हें पद, धन या भोग का मोह नहीं हो सकता। वह इनसे विरक्त है और उन पर किसी प्रकार का दबाव और प्रलोभन देकर कोई अन्यायपूर्ण कार्य नहीं कराया जा सकता। मैं विश्वासपूर्वक कहती हूँ बहन, महर्षि विश्वामित्र किसी षड़यंत्र में भागीदार नहीं बन सकते। वह मात्र राक्षसों के वध के लिए ही राम को ले जाना चाहते हैं। वे राम की क्षमता और उसकी

सम्भावनाओं से पूरी तरह आश्वस्त हैं। ...और वहन कौसल्या, राम अकेला नहीं जायेगा, उसके साथ लक्ष्मण भी होगा। दोनों भाई मिलकर राक्षसों का सामना करेंगे।

'यह नहीं हो सकता सुमित्रा, लक्ष्मण अभी अत्यन्त अल्प आयु का है। युद्ध के लिए सर्वथा अनुभवहीन है। उसे हम क्रूर, निर्दयी राक्षसों से युद्ध के लिए कैसे भेज सकते हैं?

'राम के बिना लक्ष्मण एक पल भी नहीं रह सकता बहन, राम की छाया है लक्ष्मण। लक्ष्मण अल्प आयु का अवश्य है किन्तु वह राम के कंधे से कंधा मिलाकर युद्ध करेगा, ऐसा मेरा विश्वास है।'

कौसल्या भरे नयनों से निहारने लगी सुमित्रा को, कितनी करुणा, प्रेम, सहानुभूति और समर्पण है सुमित्रा में, मेरे लिए और मेरे राम के लिए।

कौसल्या धीरे-धीरे अपनी अन्तः पीड़ा से उबरने लगी थी। अभी वह गहन विचारों में तन्मय थी जब किसी की वाणी उसके कानों में गूँजी 'बहन कौसल्या'। उसने देखा सामने कैकयी खड़ी थी बिल्कुल सहज, चिन्ताविहीन। 'चिन्ता न करें बहन, महर्षि विश्वामित्र असाधारण धनुर्धर हैं। उनके रहते पुत्र राम की यात्रा निरापद होगी। उसके शौर्य, अनुभव और युद्धकौशल में श्रीवृद्धि होगी। हमारा राम असाधारण है बहन, महर्षि विश्वामित्र को राक्षसों से युद्ध के लिए जिस नायक की आवश्यकता है और नायकत्व के जिन गुणों की आवश्यकता है, वे सभी राम में समाहित हैं। राम असीम सम्भावनाओं से भरा है, महर्षि पहचानने में भूल नहीं कर सकते बहन।

कैकयी भीरू और कोमल नहीं है। उसे महल से अधिक रणभूमि भाती है। प्रारम्भ में वह राम को अपने कक्ष में नहीं आने देती थी किन्तु धीरे-धीरे राम की शालीनता और उसकी दूसरों को जीतकर अपना बना लेने की कला से वह ऐसी प्रभावित हुई कि राम उसका अत्यन्त प्रिय बन बैठा।

कैकयी राम के शौर्य से आश्वस्त है। तो क्या कौसल्या के राम इतने समर्थ, सक्षम और सामर्थ्यवान हैं, कौसल्या भय से उबरने लगी थी, मन में आश्वस्ति का भाव आने लगा था।

[3]

दूसरे दिन एक पहर दिन चढ़ते ही यात्रा की तैयारी पूरी हो गई। आगे के रथ पर महर्षि विश्वामित्र, राम और लक्ष्मण के साथ बैठे थे। पीछे के दो रथों पर महर्षि के साथ आये संन्यासी और उनका सामान था। रथ पर चढ़ने के पूर्व महाराज दशरथ ने सुरक्षा के लिए ब्रह्मर्षि से सेना की एक टुकड़ी साथ ले जाने के लिए बहुत आग्रह किया था किन्तु ब्रह्मर्षि ने स्पष्ट शब्दों में अस्वीकार करते हुए कहा था, 'महाराज दशरथ! हम लोग अपनी सुरक्षा करने में सक्षम हैं, आप चिन्तामुक्त रहिए। मैं तो केवल राम को माँगने आया था किन्तु आपने अपने दो पुत्रों को सौंपकर न केवल कोसल राज्य की प्रजा पर बल्कि समस्त आर्यजाति पर अनुग्रह किया है। आप विश्वास रखें कार्य सम्पादित होने के बाद राम-लक्ष्मण सकुशल अयोध्या लौट आयेंगे।'

रथ पर बैठे धीर-गम्भीर राम का मुखमण्डल जहाँ आत्मविश्वास की आभा से दमक रहा था, वहीं भविष्य एवं पथ की कठिनाइयों से अनभिज्ञ लक्ष्मण के मुखमण्डल से प्रसन्नता छलक रही थी। सम्भवतः राम का सान्निध्य ही उनका सबसे बड़ा सुख था।

... और महर्षि की आज्ञा पाकर रथ चल पड़े। अब तक माताओं की आँखों में बरबस रोके हुए आँसुओं की धार फूट पड़ी। पिता दशरथ भावविह्वल हो उठे। राम और लक्ष्मण के लिए महाराज की आँखों में इतना स्नेह संचित है, किसी ने सोचा भी नहीं था।

रथ धीरे-धीरे महल से बाहर राजपथ पर चल पड़े। अत्यन्त विस्मयकारी दृश्य था। राजपथ के दोनों ओर भीड़ उमड़ पड़ी थी। नगर की जनता की आँखों में आँसू, मुख मण्डल पर विषाद की रेखायें और हृदय में राम के बिछुड़ने की पीड़ा असह्य हो उठी थी। पता नहीं फिर कब लौटेंगे दोनों भाई? राम द्रवित हो उठे जनता के स्नेह से किन्तु लक्ष्मण तो कुतूहल भरी दृष्टि से जनसमूह को देख रहे थे। राम के प्रति जनसमूह का स्नेह और आत्मिक लगाव जहाँ महर्षि के लिए आश्चर्यजनक था, वहीं उन्हें पूरी तरह आश्वस्त कर रहा था। राम सबका प्रिय है, प्रजा की आँखों में उसके लिए अगाध प्रेम और विश्वास छलक रहा है, यह शुभ लक्षण है।

नगर परकोटे से बाहर आकर सारथियों ने वल्गा ढीली कर दी और रथों ने पूरे वेग से गति पकड़ ली। धीरे-धीरे मानव बस्तियाँ विरल होने लगीं। आगे वन क्षेत्र देखकर महर्षि बोल उठे, 'सारथे, रथ रोक दो, अब हमलोग पैदल ही यात्रा करेंगे।' रथ रुक गये। महर्षि रथ के नीचे आ गये। राम-लक्ष्मण एवं पीछे

के रथों में आरूढ़ सभी ऋषि-मुनि भी रथों को छोड़कर नीचे आ गये। महर्षि ने सारथियों को धन्यवाद दिया और अयोध्या लौट जाने का आग्रह किया। आश्चर्यचकित सारथियों को अयोध्या नगरी में लौट जाने के सिवाय कोई विकल्प नहीं था।

...और महर्षि, शान्त स्थिर मन से राम, लक्ष्मण एवं अपनी शिष्य मंडली के साथ चल पड़े, उस अभीष्ट लक्ष्य की ओर जिसके लिए गत कई दिनों से मन में उद्विग्नता एवं ऊहापोह की स्थिति बनी हुई थी।

प्रकृति के मोहक रूप को राम और लक्ष्मण कुतूहल भरी दृष्टि से निहार रहे थे। प्रकृति के इस अनुपम सौन्दर्य की तो वे कभी कल्पना भी नहीं करते थे, नगर सीमा में रहकर। अकस्मात महर्षि की वाणी से तन्द्रा टूटी 'वत्स राम! दिन का अवसान निकट है, पक्षियाँ अब पश्चिम दिशा में अपनी नीड़ों में लौट रही हैं। सरयू का जल अब दीखने लगा है और वह देखो कितनी तेजी से जंगल के पशु अपनी प्यास बुझाने के लिए सरयू तट की ओर भागे जा रहे हैं। आज हमलोग भी रात्रि विश्राम इसी स्थान पर करेंगे।'

'जैसी आपकी आज्ञा गुरुदेव'।

'वत्स सूर्यकान्त! रात्रि विश्राम का प्रबंध करो'।

संन्यासी सूर्यकान्त ने अपने अन्य सहयोगियों के साथ सबके लिए अलग अलग आसन बिछा दिया, फिर सबके बैठ जाने के बाद साथ लाये संचित कन्द-मूल और फल से सबको जलपान कराया।

'वत्स राम! वन क्षेत्र में सभी स्थानों पर रथ यात्रा की सुविधा नहीं है और वैसे भी पुत्र, हम सन्यासी अपनी यात्रा में रथों का प्रयोग नहीं करते हैं। किन्तु रथों को लौटा देने का मेरा एक और उद्देश्य है। मैं चाहता हूँ कि तुम लोग अत्यन्त सहज और स्वाभाविक रूप से आमजन की पीड़ा को स्वयं देख सको। सुख और ऐश्वर्य में रहने वाला व्यक्ति आमजन की पीड़ा और उसकी असहायता का अनुमान नहीं लगा पाता। स्वयं अनुभव कर लेने के बाद निर्णय लेने में सुगमता होती है।'

'वत्स लक्ष्मण के लिए मैं अवश्य चिन्तित हूँ। उसके अल्प वय के लिए यह यात्रा कष्टप्रद होगी, क्यों पुत्र लक्ष्मण?'

'नहीं गुरुदेव! मुझे बहुत आनन्द आ रहा है, मेरे लिए आप बिल्कुल चिन्ता न करें'।

'अच्छा तो वत्स राम-लक्ष्मण! अब मैं सन्ध्या वन्दन करूँगा और उसके पश्चात् मैं एकान्त में बैठकर यात्रा मार्ग एवं अन्य योजनाओं पर चिन्तन

करूँगा। तुम लोगों के साथ आ जाने से मन अत्यन्त शान्त और आनन्द में है। आज मेरे चिन्तन में लक्ष्य प्राप्ति के उद्देश्य का नये परिप्रेक्ष्य में आकलन होगा। अब तुम लोग भी अपने आसन पर बैठकर विश्राम करो। भोजन हम फिर एक साथ करेंगे।'

राम और लक्ष्मण पास पास लगे आसनों पर बैठकर विश्राम करने लगे। कुछ संन्यासी सूखी लकड़ी एकत्रित करने लगे तथा कुछ जल संग्रह के लिए पात्र लेकर सरयू के तट की ओर निकल पड़े। सभी अपने अपने निर्धारित कार्यों में संलग्न हो गये। राम और लक्ष्मण के लिए आज एक नये अनुभव का अवसर था। शान्त, नीरव प्रकृति की गोद में रात्रि विश्राम करने की कल्पना से दोनों भाइयों को अनुपम आनन्द की अनुभूति हो रही थी।

और महर्षि? आज भी महर्षि के चिन्तन में वही बिन्दु बार-बार आ रहे थे जिनसे वह वर्षों से अशान्त थे। हमारे ऋषि-मुनियों ने इस भूमण्डल पर आर्य सभ्यता एवं संस्कृति की उदात्त भावनाओं और आर्य धर्म की मूल भावनाओं के प्रसार का जो सपना देखा था, रास्ता बताया था, उसमें समय के साथ कितना भटकाव आ गया है? आर्य सम्राट विलासिता में आकण्ठ डूब गये हैं। प्रजा की सुख-सुविधाएं गौण हो गई हैं। मंत्रिपरिषद् के सदस्य धर्म और सत्य से विरत होकर राजा की चाटुकारिता में डूब गये हैं। प्रजा पर हो रहे अत्याचार और अन्याय से सभी आँखें मूँदे हुए हैं। अत्याचारियों के मन में शासन का कोई भय नहीं है। निरीह जनता का राज्य-व्यवस्था से मोह भंग हो चुका है। राक्षसों का आमजनों पर हो रहा अत्याचार समस्त सीमाओं का उल्लंघन कर चुका है। वे न केवल अनार्यों का उत्पीड़न कर रहे हैं बल्कि आर्यों की पूजा एवं यज्ञों की पवित्रता भंग करना अपने आमोद-प्रमोद का साधन बना लिए हैं। कितनी क्रूरता और निर्ममता है उनके व्यवहार में और प्रजा जाय तो कहाँ जाय? किससे अपनी व्यथा कहे? कोई सुनने वाला नहीं है। राज्यों के सीमा-प्रहरी स्वयं व्यभिचार और अत्याचार में सहभागी हो गये हैं। राक्षसों से भिड़ने का साहस गँवा चुके हैं।

आर्यों में परस्पर प्रेम, सद्भाव और धर्मनिहित गुणों का क्षरण और पराभव अनवरत हो रहा है। एक राजा के लिए प्रजा का कल्याण ही सबसे बड़ा धर्म है। जो राजा अपनी प्रजा को सुख शान्ति एवं सुरक्षा प्रदान नहीं कर सकता, वह शासन करने का अधिकारी नहीं है। क्या करूँ, चिन्तन के इस बिन्दु पर मेरा मन बार-बार केन्द्रित हो रहा है। अब तो अन्याय, अत्याचार का प्रतिकार और धर्म का पराभव रोकना ही मेरे जीवन का लक्ष्य है और इस लक्ष्य-प्राप्ति के बिना

मुझे शान्ति नहीं मिलेगी। मेरी तपस्या का कोई अर्थ नहीं होगा।

परन्तु यह होगा कैसे? मैने शस्त्र छोड़कर शास्त्र का रास्ता चुन लिया, क्षत्रिय कर्म को त्याग कर सन्यासी बन गया और अब मैं शस्त्र नहीं धारण कर सकता। इसीलिए आज आवश्यकता है एक ऐसे जननायक की जिसके कर्मों में श्रेष्ठता और पवित्रता हो; जो सृष्टि की समस्याओं को समग्रता से देखे, जो न केवल प्रजा वत्सल हो बल्कि जनगण का पालनहार हो; जो उद्धारक, रक्षक और शरण्य हो। एक ऐसा नायक जो अप्रतिमबल का स्वामी और महाशक्ति का पुँज हो, जो शस्त्रों, महाशस्त्रों का ज्ञाता और उनका कुशल संचालक हो।

एक ऐसा नायक जो तेजस्वी और गतिमान हो, जो क्रोध पर विजय पाकर शिष्टता की मूर्ति हो, जो सुखदायक, प्रवीण तथा भयनाशक हो। जो शत्रुजीत हो किन्तु जिसमें करुणा तथा क्षमाशीलता हो। एक ऐसा नायक जो जितेन्द्रिय हो, उसके आचरण में आदर्श हो, जो सबका विश्वसनीय हो, जो सर्वमान्य और निर्विवाद हो। एक ऐसा समर्थ जननायक जो जन को निर्भय बना सके, उसें आत्मविश्वास की अमोघ शक्ति से भर दे।

यही तो विश्वामित्र के चिन्तन का केन्द्र बिन्दु है, यही उनका अन्वेषण है और उनके तप का उद्देश्य और लक्ष्य है। दबे, कुचले, उत्पीड़ित आमजन की निरीह आँखें किसी ऐसे ही नायक और उद्धारक की प्रतीक्षा कर रही है प्रभु!

आर्य सभ्यता, संस्कृति और आर्य-धर्म की मर्यादा संकट में है। हे जगतनियंता! मेरी तपस्या, मेरा यज्ञ, मेरी पूजा और मेरे सत्कर्मों का फल किस काम का यदि उससे जगत का कल्याण न हो; निरीह और असहायजनों की पीड़ा कम न हो। यही मेरे सम्पूर्ण चिन्तन का केन्द्र है प्रभु। इस लक्ष्य-प्राप्ति के बिना मेरा मन भटकता रहेगा। इस चिन्ता से मुक्त होने की मुझे शक्ति दो मेरे प्रभु।

इसी के निमित्त मैंने अयोध्या की यह यात्रा भी पूरी की है। दशरथ ने अपनी इच्छा के विरूद्ध मुझे राम को दिया है। अब मुझे देखना होगा कि क्या राम मेरी अपेक्षाओं के अनुरूप हैं और लक्ष्य साधने में सक्षम हैं?

राम सौम्य, शिष्ट और मर्यादित आचरण वाला राजकुमार है। अपने पिता, सभी माताओं एवं ऋषि-मुनियों का समुचित सम्मान करता है। सभी का विश्वास एवं स्नेह प्राप्त है। राम में विनयशीलता है और वह छोटे भाइयों से अतिशय प्रेम करता है, सभी इसके साथ छाया की तरह रहते हैं। यह कितनी विस्मयकारी बात है कि मैंने तो केवल राम को माँगा था, किन्तु लक्ष्मण भी

हठपूर्वक और सुमित्रा की आज्ञा से राम के साथ आ गये। समर्पण, विश्वास और भरोसे की पराकाष्ठा है यह। अपने स्नेह, विश्वास और मिलनसारिता से इसने अयोध्यावासियों का भी हृदय जीत लिया है। राम का अल्प प्रवास भी नगरवासी सहन नहीं कर पा रहे हैं। जनसमुदाय राम के प्रेम में व्याकुल होकर नगर पथ एवं वीथिकाओं में उमड़ पड़ा। सभी भाव-विह्वल थे, सबकी अश्रुपूरित आँखों में एक बार राम को देख लेने की ललक और बेचैनी थी।

अब तक की घटनाएँ राम में भरोसा पैदा करती हैं, सम्भावनाओं का सुखद संकेत दे रही हैं। राम का आचरण, जन आकांक्षाओं के अनुरूप और मेरी अपेक्षाओं के समीप दीख रहा है, किन्तु जिस लक्ष्य की प्राप्ति के उद्देश्य से राम को ले जा रहा हूँ उसके संबंध में उसके विचारों का आकलन करना आवश्यक है क्योंकि मनुष्य की सोच ही उसके कर्मों को दिशा देती है, उसके उद्देश्य एवं लक्ष्य को निर्धारित करती है। विचार ही हमारे आचरण एवं व्यवहार की प्रेरक शक्ति होते हैं।

ध्यानमग्न महर्षि के मुखमण्डल पर कभी पीड़ा, कभी प्रसन्नता, कभी गहन सोच और कभी सहजता के भाव आ जा रहे थे। उनके चिन्तन के क्षणों में प्रायः ऐसा ही होता है।

विलम्ब हो रहा था। अतएव एक संन्यासी ने सूचना दी, 'गुरुदेव भोजन ग्रहण करने के लिए सभी आपकी प्रतीक्षा कर रहे हैं'। चिन्तन का क्रम टूट गया। महर्षि ने आँखें खोलीं और सहज भाव से कहा 'चलो आता हूँ'।

भोजन के लिए सभी आसन पर बैठ गये। धुले हुए स्वच्छ निर्मल केले के पत्तों पर रोटी और शाक परोस दी गयी। महर्षि ने अन्न देवता को नमन किया एवं सभी से भोजन ग्रहण करने का आग्रह किया।

भोजनोपरांत महर्षि ने लक्ष्मण से पूछा, 'वत्स अभी तक तो तुम स्वादिष्ट पकवान खाते रहे हो लेकिन हमारे साथ तो इसी प्रकार का भोजन मिलेगा। कैसा लगा भोजन वत्स?'

'गुरुदेव, बहुत स्वादिष्ट भोजन था, मैं तो तृप्त हो गया। ऐसा स्वादिष्ट भोजन तो राजमहल में मिलता ही नहीं।'

'वत्स लक्ष्मण! सच पूछो तो व्यक्ति की भूख ही भोजन का स्वाद तय करती है। तुम्हें भोजन अच्छा लगा, यह जानकर प्रसन्नता हुई पुत्र।'

.... थोड़ी देर बाद ही सभी अपने-अपने आसन पर गहरी

नींद में आबद्ध हो गये।

[4]

महर्षि विश्वामित्र के निर्देशानुसार सभी तड़के उठ गये। नित्य कर्म से निवृत होकर राम-लक्ष्मण आगे की यात्रा के लिए तैयार हो गये। पूरब में लालिमा उमड़ रही थी। पक्षियों के कलरव से वातावरण गुंजायमान हो उठा था। शीतल वायु से तन-मन उल्लसित हो रहा था।

आगे की यात्रा के लिए महर्षि चल पड़े और उनके पीछे थे राम, लक्ष्मण और ऋषि-मण्डली। महर्षि की योजनानुसार सरयू तट पर एक बड़ी नाव, पाँच कुशल नाविकों के साथ यात्रा के लिए प्रतीक्षारत थी। मुनि के आगमन का समाचार सरयू तट पर साधना करने वाले ऋषि-मुनियों को पहले ही हो गया था। प्रस्थान की बेला में हाथ जोड़कर सभी महर्षि की मंगलमय यात्रा एवं लक्ष्य प्राप्ति की शुभकामना दे रहे थे किन्तु उनके मुखमण्डल पर आश्वस्ति कम, भय और आशंका अधिक दीख रही थी। महर्षि शान्त और स्थिर चित्त थे। वे नाव पर बैठ गये, उनके पीछे राम-लक्ष्मण एवं अन्य ऋषिगण यथा स्थान बैठ गये।

महर्षि ने नाव में अपने स्थान पर खड़े होकर तट पर खड़े संन्यासियों को आशीर्वाद दिया और उन्हें आश्वस्थ रहने का संकेत दिया।

और नाव चल पड़ी अपने गंतव्य की ओर। नाविकों ने धीरे-धीरे नाव को सरयू की मध्यधारा में डाल दिया और नदी के वेग से नाव की गति बढ़ गई। महर्षि की योजना थी कि अन्धेरा होने के पूर्व वे सरयू और गंगा के संगम के निकट पहुँच जायँ ताकि रात्रि विश्राम का समुचित प्रबंध हो सके अन्यथा बीच में ही नदी के किनारे किसी वीरान स्थान पर रूकना पड़ेगा।

अचानक राम को चिन्ताग्रस्त देख महर्षि पूछ बैठे, 'वत्स राम किस सोच में पड़े हो? क्या अयोध्या की याद बेचैन कर रही है?'

नहीं गुरुदेव! मैं तो तट पर खड़े ऋषि-मुनियों की चिन्ता और व्यग्रता से व्यथित हूँ। गुरु वशिष्ठ के आश्रम में रहने वाले सन्यासियों को मैंने इतना व्यग्र और चिन्तित होते नहीं देखा है।

राम की चिन्ता से महर्षि आश्वस्त हुए। सहज भाव से बोले, 'वत्स तुम्हें अयोध्या से ले आने का मेरा उद्देश्य केवल सिद्धाश्रम में होने वाले यज्ञ की रक्षा करना ही नहीं है बल्कि मेरा मंतव्य है कि तुम अपने राज्य की जनता, ऋषि-मुनियों और तपस्वियों की पीड़ा, उनका भय, उनकी व्यग्रता और उन पर

हो रहे अत्याचारों को स्वयं अपनी आँखों से देख लो। गुरु वशिष्ठ का आश्रम राज्यपोषित है, वहाँ रहने वाले ऋषि-मुनियों को राजाश्रय प्राप्त है। वहाँ सभी सुविधाभोगी हो गये हैं। उनकी सोच में अयोध्या नगर के बाहर, कोसल राज्य की जनता, उसका दुःख और उसकी पीड़ा कभी नहीं आती। सच पूछो तो राम! सुविधाभोगी व्यक्ति आत्मकेन्द्रित हो जाता है, उसका विवेक समाप्त हो जाता है, वह न्याय अन्याय के पचड़े में नहीं पड़ता है।

'आपकी बातों से असहमत होने का कोई प्रश्न ही नहीं है गुरुदेव।'

मंत्रिपरिषद् के सदस्य भी सुविधाभोगी, दरबारी और चापलूस हो गये हैं वत्स राम! वे वही बात करते हैं जो राजा को प्रिय लगे। वे राजा को वस्तुस्थिति की वास्तविक जानकारी और सही सूचना नहीं दे रहे हैं। राज्य की वंचित, उपेक्षित और पीड़ित जनता का वास्तविक प्रतिनिधित्व नहीं हो पा रहा है। जनता के बीच जाना तो दूर की बात है, उन पर हो रहे अत्याचार और अन्याय के प्रति संवेदित होने वाला भी कोई नहीं है। जनता समझ नहीं पा रही है कि न्याय और सुरक्षा के लिए किसके पास जाया जाय। सैनिक और सेनापति भी, राक्षसों की तरह जनता का उत्पीड़न और शोषण कर रहे हैं। 'क्या राज्य व्यवस्था के बारे में तुम्हारा आकलन इससे भिन्न है वत्स राम?'

'गुरुदेव! कुछ दिनों से मैं स्वयं ऐसा अनुभव कर रहा हूँ। कोसल राज्य की पूरी व्यवस्था अयोध्या नगर तक ही सीमित हो गयी है। राज्य की शेष जनता की वाणी राजभवन तक नहीं पहुँच रही है। ऐसी स्थिति में असामाजिक तत्वों का उभरना स्वाभाविक है ऋषिश्रेष्ठ।'

और पुत्र राम! आर्य सम्राट भी अकर्मण्य और विलासी हो गये हैं। चापलूस दरबारियों से घिरे राजा राजधर्म, न्याय-व्यवस्था और जन आकांक्षाओं के अनुरूप नहीं रह गये हैं। आर्य सम्राट एक-दूसरे से द्वेष रखते हैं और एक-दूसरे को नीचा दिखाने और अपमानित करने का अवसर नहीं खोते तथा एक राज्य दूसरे में कुव्यवस्था फैलाने में गर्व का अनुभव करता है।

'आश्चर्य होता है वत्स राम कि आर्य सम्राट कई कई विवाह कर विलासितापूर्ण जीवन के अभ्यस्त हो गये हैं। राजसभा में जनप्रतिनिधियों के साथ बैठने से अधिक उनका समय राजमहल के अंतरंग कक्षों में होता है। महाराज दशरथ भी इसके अपवाद नहीं हैं पुत्र राम। अधेड़ावस्था में उन्होंने तीसरा विवाह रचाया। क्या ऐसा करना दशरथ के लिए अपरिहार्य था? क्या किसी आर्य सम्राट को एक से अधिक विवाह करना उचित है?'

पिता पर किये गये व्यंग्य से राम का मुखमण्डल लाल हो गया। किंचित विचलित स्वर में कहा, 'क्षमा करें गुरूदेव, इस संबंध में, मैं केवल इतना ही कहना चाहूँगा कि मनुष्य को जीवन में केवल एक ही विवाह करना चाहिए। यही राजधर्म के अनुरूप और प्रजा के लिए अनुकरणीय है।'

तुमने मुझे आश्वस्त किया राम। मैं तुमसे यही अपेक्षा कर रहा था।

'गुरुदेव! मैं जानना चाहता हूँ कि राक्षस आर्यों और ऋषि-मुनियों को क्यों उत्पीड़ित कर रहे हैं, उनका उद्देश्य क्या है और क्या वे इतने सबल और सक्षम हैं कि आर्य सम्राट उनका सामना नहीं कर पा रहे हैं।'

'वत्स राम! तुमने समयोचित प्रश्न पूछा है। सच पूछो तो इस बिन्दु पर मैं स्वयं तुमसे बात करने वाला था किन्तु पहले तुम लोग अल्पाहार कर लो। वत्स लक्ष्मण को भूख लगी होगी।'

लक्ष्मण मुस्कराने लगा, 'नहीं गुरुदेव, मैं तो आपकी और राम भइया की बातें तन्मयता से सुन रहा था। सच पूछिए गुरुदेव, तो मैं अपनी भूख भूल चुका था।'

'वत्स लक्ष्मण सायंकाल तक हमलोग समय समय पर फलाहार ही करते रहेंगे।'

'बहुत अच्छा गुरुदेव' लक्ष्मण ने कहा।

फलाहार के बाद महर्षि ने कहना प्रारम्भ किया 'वत्स राम, तुमने रावण का नाम तो सुना होगा। वह राक्षस जाति का है और लंका नाम के देश का सम्राट है किन्तु उस जाति के लोग भारी संख्या में इस क्षेत्र में भी फैले हुए हैं। रावण के संबंधी सुबाहु, ताड़का और ताड़का का पुत्र मारीच इस क्षेत्र में रावण का प्रतिनिधित्व करते हैं। वैसे तो रावण अत्यन्त बलशाली, विद्वान, उन्नत शस्त्रों का वाहक तथा शस्त्र संचालन में अत्यन्त कुशल है, किन्तु पूरी राक्षस जाति मनसा, वाचा, कर्मणा क्रूर, निर्दयी, अहंकारी और उत्पीड़क है। आखेट करना इनकी प्रवृत्ति है तथा माँस ही इनका मुख्य भोजन है। आखेट नहीं मिलता है तो वे अन्य जाति के मनुष्यों का वध करने में भी संकोच नहीं करते। लोगों को उत्पीड़ित करना, पूजा-पाठ तथा यज्ञों की पवित्रता भंग करना इनका आमोद-प्रमोद है। आर्य ही नहीं अनार्यों की अन्य जातियों- शबर, किरात, निषाद, कोल, भील जो आर्य सम्राटों के राज्य के निवासी हैं, को उत्पीड़ित करना इनकी दिनचर्या का अंग है। इससे भी बड़ी बात है वत्स राम कि रावण के नेतृत्व में राक्षस जाति

एकजुट है।'

दूसरी तरफ परस्पर इर्ष्या-द्वेष और एकता के अभाव में आर्य सम्राट अपना आत्मबल और नैतिक साहस खो चुके हैं। सैन्य बल शिथिल एवं शौर्य विहीन हो गया है। राक्षसों से भिड़ने का साहस नहीं रह गया है। ऐसी स्थिति में राक्षस उच्छृंखल होकर निर्बाध अत्याचार और अनाचार कर रहे हैं। महर्षि किंचित उदास हो गये।

'यह तो राजधर्म के विपरीत है गुरुदेव। यदि राजा-प्रजा-वत्सल नहीं है, अपनी प्रजा को सुरक्षा नहीं प्रदान कर सकता, सामान्यजन को मर्यादित जीवन जीने और अपनी धार्मिक मान्यताओं के अनुरूप आचरण और विधि-विधान की स्वतंत्रता नहीं दे पाता है तो उसे शासन करने का अधिकार नहीं होना चाहिए।'

'तुम्हारे विचारों को जानकर प्रसन्नता हो रही है वत्स राम। यही आर्योचित विचार है। एक बात और कहनी है राम, आर्य सम्राटों के पास सामान्य धनुष-वाण, तलवार और बरछी, भाले हैं जो उन्नत हथियारों के सामने टिक नहीं सकते। अस्त्र-शस्त्रों को अचूक और कारगर बनाने के लिए कोई अन्वेषण नहीं हो रहा है, जिसके अभाव में आर्यसम्राटों की शक्ति का अनवरत क्षरण हो रहा है। युद्ध जीतने के लिए मनोबल, आत्मविश्वास और शौर्य के साथ उन्नत हथियारों एवं उनके कुशल संचालन में पारंगत होने की आवश्यकता पड़ती है वत्स। उन्नत हथियारों के बिना युद्ध नहीं जीता जा सकता है।'

'दिव्यास्त्रों पर कोई शोध नहीं हो रहा है। दिव्यास्त्रों का ज्ञान बहुत कम लोगों के पास है और जिनके पास है, वे योग्य व्यक्तियों के अभाव में अपना ज्ञान दे नहीं पा रहे हैं क्योंकि अयोग्य हाथों में इन दिव्यास्त्रों का दुरूपयोग हो सकता है।'

मेरे स्वयं के पास कुछ दिव्यास्त्र हैं राम, परन्तु किसी योग्य व्यक्ति के अभाव में वे अभी तक मेरे ही पास पड़े हैं और यह मेरी चिन्ता का कारण है।

'गुरुदेव क्षमा चाहता हूँ, मेरे मन में दो सन्देह और है जिनके निराकरण के लिए मेरा मन बार बार उद्वेलित हो रहा है।'

'पूछो वत्स! तुम्हें सभी सन्देहों और आशंकाओं से मुक्त करने में मुझे प्रसन्नता होगी।'

'गुरुदेव आप महान धनुर्धर, अप्रतिम योद्धा और दिव्यास्त्रों के ध ाारक और ज्ञाता हैं। मैं आपके समक्ष कहीं नहीं ठहरता फिर आप क्यों नहीं इस

युद्ध का नेतृत्व करते, मेरी आवश्यकता आपको क्यों पड़ी गुरुदेव?'

महर्षि उन्मुक्त भाव से हँसने लगे 'राम, तुम्हारा ऐसा सोचना स्वाभाविक है पुत्र। तुम्हें तो ज्ञात ही है कि मैं एक क्षत्रिय हूँ और पूरी निष्ठा से मैंने क्षत्रिय धर्म का निर्वहन किया है किन्तु अपने शेष जीवन के लिए मैंने तपस्या, त्याग और मानव कल्याण का रास्ता चुन लिया है ताकि चित्त को शान्ति, चिन्तन को गहराई और मानव सेवा का अवसर मिल सके। सच पूछो तो वत्स, मुझे वह इच्छित शान्ति नहीं मिल पाई। जनता की पीड़ा और उन पर हो रहे जघन्य अपराधों तथा उनके करुण-क्रन्दन से चित्त बार-बार व्यथित हो उठता है, मन की शान्ति छिन जाती है वत्स। अब एक बार तपस्वी का धर्म अपना लेने के बाद पुनः शस्त्र उठाना न तो न्यायोचित है और न, ही आर्य धर्म के अनुरूप है राम...।'

'और मेरा अन्तिम प्रश्न है गुरुदेव कि क्या इस युद्ध और हिंसा का कोई विकल्प है?'

'वत्स राम! मैं युद्ध पिपासु नहीं हूँ। मैंने राक्षसों द्वारा हिंसा छोड़ने और शेष समाज से सामंजस्य बनाने के लिए अनवरत प्रयास किया, किन्तु मेरे सभी प्रयास निष्फल हो गये।'

राम, कभी कभी शान्ति के लिए जब अन्य सभी विकल्प समाप्त हो जाते हैं; युद्ध अपरिहार्य हो जाता है और सच पूछो तो, वत्स, यह युद्ध न्याय और अन्याय, हिंसा और अहिंसा के बीच है, दो भिन्न-भिन्न संस्कारों और संस्कृतियों के बीच है। यह युद्ध दो जीवन पद्धतियों के अपने अपने अस्तित्व के बीच है। युद्ध अब अपरिहार्य हो गया है, कोई विकल्प नहीं बचा है राम।

राज्य व्यवस्था में जनता का भरोसा और विश्वास पैदा करना होगा, जनता के आत्मबल को लौटाना होगा, उनमें संवेदना का भाव जगाना होगा, उन्हें सामाजिकता से जोड़ना होगा। अन्याय, अत्याचार और उत्पीड़न से अभिशप्त आमजन को न्याय और अभय प्रदान करना होगा और इसी के लिए आमजन अपने मुक्ति-दाता की प्रतीक्षा कर रहा है राम।

राम उद्विग्न और व्यथित हो गये, किन्तु लक्ष्मण का मुखमण्डल क्रोध से लाल हो गया।

'गुरुदेव राक्षसों से युद्ध करने का अवसर कब मिलेगा, मेरा मन अधीर हो रहा है' व्यग्र लक्ष्मण ने पूछा।

'यह अवसर शीघ्र ही मिलने वाला है वत्स लक्ष्मण, प्रतीक्षा के क्षण समाप्त होने को हैं।'

आवेशित मन को यथासम्भव संयत करते हुए राम ने कहा, 'मेरे मन का सन्देह समाप्त हो गया है गुरुदेव। अन्याय को स्वीकारना अन्याय करने के समतुल्य होता है। मैं क्षत्रिय हूँ, अन्याय के विरूद्ध युद्ध करना प्रत्येक क्षत्रिय का धर्म है। यही हमारी संस्कृति है। इस युद्ध में राम भी पीछे नहीं रहेगा गुरुदेव।'

'आश्वस्त हुआ पुत्र राम। तुम मेरी अपेक्षाओं के पूर्णतया अनुरूप हो। मेरे मन की सभी आशंकायें एवं सन्देह दूर हो गये हैं। संशय और ऊहापोह की स्थिति समाप्त हो गई है। आगे बढ़ने के लिए मेरे मन को भरोसा, उत्साह और प्रेरणा का सम्बल मिल चुका है।'

मन में आश्वस्ति का भाव आते ही महर्षि सहज हो गये। अवसाद के स्थायी भाव से मुक्त महर्षि का मुख-मण्डल तेजोमय हो गया, आँखों में स्वाभाविक चमक आ गई। 'राम विश्वास और भरोसे के योग्य है। विश्वामित्र ने नायकत्व के गुणों का जो सपना देखा था, राम उनका सजीव रूप हैं। अन्तिम निर्णय का समय आ गया है।'

'राम, सूर्यास्त का समय समीप है। आज हमलोग सरयू तट पर ही रात्रि विश्राम करेंगे।'

'जैसी आपकी आज्ञा गुरुदेव।'

महर्षि के निर्देशानुसार नाविकों ने नाव रोककर तट से लगा दी। महर्षि के नाव से उतरने के बाद सभी धीरे-धीरे नाव से उतर गये।

नाविकों को निर्देश देते हुए ऋषि ने कहा 'सब लोगों को यहाँ तक सकुशल पहुँचाने के लिए आप लोगों को धन्यवाद और मेरा आशीर्वाद। यहाँ से हमलोग पैदल ही सिद्धाश्रम की यात्रा करेंगे। अतएव कल प्रातःकाल आप लोग अपने स्थान पर लौट जायेंगे। आज हमलोगों के साथ ही आप लोग भी रात्रि विश्राम करेंगे।'

'जैसी आपकी आज्ञा गुरुदेव' मुख्य नाविक ने कहा।

संन्यासीगण रात्रि विश्राम की आवश्यक तैयारी में जुट गये। बिछाये गये आसनों पर सभी विश्राम की मुद्रा में आ गये। जहाँ लक्ष्मण के मुख-मण्डल पर बाल-सुलभ प्रसन्नता थी, वहीं राम, महर्षि के न्याय-युद्ध के संबंध में विचारमग्न हो गये।

'सामान्य जन के लिए महर्षि के मन में कितना स्नेह, कितनी पीड़ा और संवेदना है? आततायी राक्षसों द्वारा आमजन पर होने वाले अन्याय और अत्याचार के विरूद्ध महर्षि ने अपनी तपस्या, साधना और पूरा जीवन दाँव पर

लगा दिया है। इसी अन्याय के प्रतिकार के लिए महर्षि ने अयोध्या तक की यात्रा की और अयोध्या के पूरे सैन्यबल को अस्वीकार कर पिताश्री से केवल मुझे माँगकर लाये हैं। कितना विश्वास और भरोसा है मुझ पर?' श्रद्धा से विह्वल राम के हाथ जुड़ गये- 'हे प्रभु! मुझमें इतनी शक्ति और सामर्थ्य दो कि मैं गुरुदेव के विश्वास और भरोसे की रक्षा कर सकूँ। जन सामान्य पर होने वाले जघन्य अत्याचारों का शमन कर उनकी पीड़ा कम कर सकूँ। उन्हें भयरहित और सुख-शान्ति तथा आनन्द से रहने का अधिकार दे सकूँ।'

अचानक राम विचारों की तन्द्रा से जाग गये। महर्षि को चिन्तातुर देखकर पूछ बैठे, 'गुरुदेव! आपको देखकर ऐसा प्रतीत हो रहा है जैसे आप किसी ऊहापोह की स्थिति में हैं।'

'तुम्हारा अनुमान सत्य है पुत्र! मन में उठ रही एक शंका के निवारण के बिना मेरा चित्त शान्त नहीं होगा।'

'आज्ञा दे गुरुदेव! क्या शंका निवारण में मेरी कोई भूमिका है?'

'हाँ वत्स राम! जैसा कि मैंने तुम्हें बताया, मेरे पास कुछ संरक्षित दिव्यास्त्र और दिव्यज्ञान है। मैं इन्हें तुमको सौंपना चाहता हूँ किन्तु मेरे मन में एक संशय बार बार उठ रहा है।'

'क्या संशय है गुरुदेव?'

'राम! इन दिव्यास्त्रों को देने के पहले मैं आश्वस्त होना चाहता हूँ कि इनका दुरूपयोग नहीं होगा। इनका प्रयोग केवल अन्यायियों और अत्याचारियों के विरूद्ध तथा शोषितों और वंचितों को न्याय दिलाने के लिए ही होगा; व्यक्तिगत या सत्ता के लाभ के लिए नहीं होगा तथा इस लक्ष्य की प्राप्ति में अवरोधक शक्तियों की उपेक्षा की जायेगी।'

'गुरुदेव! आपकी संतुष्टि और विश्वास के लिए मुझे क्या करना होगा?'

'पुत्र, तुम्हारा वचन देना ही मेरे लिए पर्याप्त होगा। एक बार वचनबद्ध होकर तुम किसी भी परिस्थिति में नहीं भटकोगे, ऐसा मेरा विश्वास है।'

'मैं दशरथ पुत्र राम आपके समक्ष वचन देता हूँ कि आजीवन आपके द्वारा निर्दिष्ठ लक्ष्य के अतिरिक्त इन दिव्यास्त्रों का प्रयोग किसी अन्य लक्ष्य की प्राप्ति के लिए अनुकूल या प्रतिकूल किसी भी परिस्थिति में नहीं होगा। न्याय के इस लक्ष्य प्राप्ति में सभी अवरोधक शक्तियों का प्रतिकार करूँगा, भले ही वह अवरोध मेरे अत्यन्त निकट स्वजन का ही क्यों न हो।'

महर्षि का मुख-मण्डल नई आभा से खिल उठा। राम के सिर पर हाथ रखकर बोले, 'आश्वस्त हुआ पुत्र राम। अब तुम लक्ष्मण के साथ सरयू जल में आचमन कर मेरे पास बैठो।'

राम और लक्ष्मण, सरयू जल से अभिमंत्रित होकर महर्षि के समक्ष बैठ गये।

महर्षि की वाणी प्रस्फुटित हुई 'तुम दोनों को भूख-प्यास, नींद और थकावट पर नियंत्रण हेतु तथा किसी भी अनिष्ट से रक्षा के लिए मैं अतिगुप्त रहस्य 'बला और अतिबला' से दीक्षित कर रहा हूँ पुत्रों।'

राम और लक्ष्मण ने अत्यन्त शान्त चित्त और निष्ठापूर्वक दीक्षा ग्रहण की, फिर गुरू चरणों में गिरकर प्रणाम किया एवं गुरु का आशीर्वाद प्राप्त किया।

राम, कल से हमारी पैदल यात्रा प्रारम्भ होगी। मार्ग में राक्षसों के मिलने की सम्भावना को अस्वीकार नहीं किया जा सकता। उनसे मिलने के पूर्व मैं अपने पास संरक्षित दुर्लभ दिव्यास्त्रों को तुम्हें अर्पित कर देना चाहता हूँ।

महर्षि सहज और प्रफुल्लित थे। आज दिव्यास्त्रों को योग्य हाथों में अर्पित करने के दायित्व से मुक्ति का क्षण था, राम के रूप में अपने अन्वेषण की पूर्णता का सुख था। अन्याय के विरूद्ध युद्ध का नायक मिल जाने का सुख था और सुख था लम्बी अवधि से अशान्त चित्त के स्थिर होने और ठहराव पाने का...।

... विचारों का क्रम टूटा। महर्षि ने अपने समक्ष राम को जिज्ञासु भाव से बैठे देखा।

'हाँ तो पुत्र राम, मैंने दिव्यास्त्रों को श्रेणीबद्ध कर दिया है। यह देखो! ब्रह्मा, विष्णु और महादेव द्वारा प्राप्त किये गये परम शक्तिशाली, अचूक और अमोघ दिव्यास्त्र हैं। इन्हें ग्रहण करो महावली रघुनन्दन...।

... यह देखो, इन्द्र का दिया हुआ 'बज्रास्त्र है; और इनको देखो, विभिन्न देवताओं द्वारा दिये गये दिव्यास्त्र हैं; और यह परम तेजस्वी दिव्यास्त्र सूर्यदेव के अनुग्रह से प्राप्त किया है। मैं इन समस्त दिव्यास्त्रों को तुम्हें सौंप रहा हूँ राम, इन्हें ग्रहण करो।'

अब मैं एक-एक कर सभी दिव्यास्त्रों के संचालन की विधि तुम्हें समझाता हूँ।

... और पूरी श्रद्धा और निष्ठा से गुरुवाणी को अमृत की तरह

पीते रहे राम। आनन्द से राम की आँखें बन्द हो गयी। 'कितना समर्पण, स्नेह और विश्वास है मेरे ऊपर गुरुदेव का। कठोर तपस्या और साधना के बल पर देवताओं से अर्जित दुर्लभतम दिव्यास्त्रों को कितने सहज और मुक्तभाव से मुझे अर्पित कर दिया है। इन दिव्यास्त्रों के बारे में न तो सुना था, न कभी देखा था और न, किसी ने चर्चा तक ही की थी। गुरु वशिष्ठ ने तो अब तक मुझे वर्ण-व्यवस्था की उपादेयता और इसके पालन के लिए ही दीक्षित किया है, किन्तु वास्तव में महर्षि का चिन्तन ही श्लाघ्य है, वन्दनीय है, पूजनीय और अतुलनीय है।

श्रद्धा से अभिभूत 'राम', गुरु चरणों से लिपट गये।

'उठो राम! अब तुम समर्थ हो, अजेय हो, महाबली हो, अब तुम्हारे कर्म का समय आ गया है वत्स। जाओ अब विश्राम करो। कल प्रातःकाल से हमारी यात्रा पुनः प्रारम्भ होगी।'

प्रातःकाल सरयू के पावन जल में स्नान कर राम-लक्ष्मण, भगवान शिव की पूजा-अर्चना के लिए तैयार हो गये, किन्तु आसपास कहीं स्थापित शिवलिंग का पता नहीं चला। तब लक्ष्मण ने सरयू तट पर विधि-विधान से शिवलिंग की स्थापना की। महर्षि विश्वामित्र एवं दोनों भाइयों ने शिव अर्चना की एवं भगवान महादेव से आशीर्वाद की कामना की। फिर प्रसन्न विश्वामित्र ने स्नेहिल शब्दों में कहा, 'वत्स लक्ष्मण, आज से तुम्हारे द्वारा स्थापित शिवलिंग को 'लक्ष्मणेश्वर (लखनेश्वर) महादेव' के नाम से जाना जायेगा एवं अनन्तकाल तक इनकी पूजा-अर्चना होती रहेगी।'

'वत्स राम, अब हमलोग गंगा और सरयू के संगम स्थल की ओर बढ़ रहे हैं। रास्ते में अत्यन्त सघन 'कोरन्ट वन' है, जहाँ अन्य आदिवासी, अनार्यजनों के साथ राक्षस जाति के लोग भी पाये जाते हैं। सरयू से संगम के पश्चात गंगा विशाल जलराशि लेकर आगे पूरब दिशा में बढ़ती हैं। बायें तट पर माँ गंगा ने अपनी धारा बदलकर एक अत्यन्त निर्मल, रमणीक, शान्त एवं नैसर्गिक छटा से सजा-सँवरा विमुक्त क्षेत्र बनाया है जहाँ आर्य सन्त अनादि काल से पूजा अर्चना करते आ रहे हैं। इस विमुक्त क्षेत्र को आर्य-ऋषि 'धर्मारण्य' कहते हैं।'

'वत्स राम, ...इसी धर्मारण्य में महान सन्तों एवं तपस्वियों ने अपने आश्रमों में बैठकर कालजयी अरण्यक, उपनिषद् एवं अनेक महाकाव्यों की रचना की जो आर्यधर्म की उत्कृष्टता की पहचान हैं।'

...महर्षि को बीच में ही टोकते हुए लक्ष्मण ने पूछा, 'गुरुदेव,

धर्मारण्य की पवित्रता एवं मोहक छवि को देखने की इच्छा हो रही है। क्या सिद्धाश्रम के रास्ते में हमलोग उसे देख सकेंगे?'

वत्स लक्ष्मण! तुम्हारे पिताश्री से वचनवद्ध हूँ। समय की विवशता है। हमलोग फिर कभी उस पर चर्चा करेंगे।

'क्षमा करें गुरुदेव! मैं तो भूल ही गया था।'

'हाँ तो वत्स राम! 'कोरन्ट वन' में रहने वाले राक्षस यहाँ की अन्य जातियों- कोल, भील, निषाद, शबर के साथ आर्यों को भी प्रताड़ित करते हैं।'

सायंकाल होते-होते महर्षि विश्वामित्र संगम स्थल तक पहुँच गये। संगम स्थल को देखकर राम-लक्ष्मण विमुग्ध हो गये। नीरवता को भंग करते सरयू का गर्जन-तर्जन के साथ गंगा में समा जाना अत्यन्त स्तब्धकारी और रोमांचित करने वाला दृश्य था...।

[5]

अचानक कदमों की आहट सुनाई दी। महर्षि सतर्क हो गये। राम-लक्ष्मण भी सतर्क होकर आने वाले की प्रतीक्षा करने लगे किन्तु यह तो संन्यासियों की टोली थी जो धीरे-धीरे संगम की ओर ही बढ़ रही थी। निकट पहुँचकर संन्यासियों की टोली ठिठक गई। महर्षि विश्वामित्र को अपने समक्ष देखकर संन्यासियों ने प्रणाम किया। महर्षि ने सबका कुशलक्षेम पूछा और फिर राम-लक्ष्मण का परिचय दिया। हर्षित संन्यासियों ने महर्षि को आतिथ्य स्वीकार कर रात्रि विश्राम 'कामाश्रम' में ही करने का निमंत्रण दिया।

पुत्र राम! कामाश्रम एक पौराणिक एवं ऐतिहासिक स्थान हैं।

'गुरुदेव! यह स्थान अत्यन्त शान्त, आकर्षक एवं मुग्धकारी है। सरयू-गंगा का यह संगम इस स्थान को और भव्य और अलौकिक बना रहा है। इसकी ऐतिहासिकता जानने को मेरा मन आतुर हो रहा है गुरूदेव।'

'वत्स राम! एक बार देवों के देव, महादेव पृथ्वी लोक पर विचरण कर रहे थे। घूमते हुए महादेव जब इस स्थान पर पहुँचे तो इसके अलौकिक सौन्दर्य को देखकर मुग्ध हो गये। यहीं पर उन्होंने अपनी तपस्या प्रारम्भ की। तपस्या में मन रम गया और ध्यान ऐसा लगा कि महादेव बहुत दिनों तक समाधिस्थ रह गये। महादेव के बिना स्वर्गलोक में देवता बेचैन हो गये किन्तु महादेव का ध्यान भंग करने का साहस कोई देवता नहीं कर सका। बहुत सोच-विचार के बाद

देवताओं ने कामदेव से प्रार्थना की कि मात्र वे ही एक विकल्प बचे हैं जो महादेव का ध्यान भंग कर सकते हैं। महादेव का ध्यान भंग लोकहित में है। देवताओं के बहुत अनुनय-विनय के पश्चात कामदेव यहाँ पहुँचे और महादेव के समाधि-भंग का हर सम्भव प्रयास किया, किन्तु महादेव पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। तब विवश होकर कामदेव ने अमोघ पुष्पवाण से महादेव के वक्षस्थल को लक्ष्य किया। कामभाव से पीड़ित महादेव का ध्यान तो भंग हो गया किन्तु अतिशय क्रोध के कारण उनका तीसरा नेत्र खुल गया और उसकी ज्योति की तीव्र ज्वाला में कामदेव यहीं भस्म हो गये; तभी से इस स्थान को 'कामाश्रम' कहा जाता है और इस स्थान की पवित्रता के कारण संन्यासीगण यहाँ तपस्या और साधना करने आते हैं।'

जिज्ञासा शान्त करने के बाद महर्षि ने राम से कहा, 'वत्स, राम चलो आज हमलोग इसी 'कामाश्रम' में रात्रि-विश्राम करेंगे।'

संन्यासियों के आतिथ्य से अभिभूत राम-लक्ष्मण प्रातःकाल आगे की यात्रा के लिए तैयार हो गये। महर्षि सबको साथ लेकर गंगा तट की ओर चल पड़े। यात्रा के लिए पहले से तैयार एक सुन्दर नाव गंगा तट पर लगी थी। सभी धीरे-धीरे नाव में बैठ गये और फिर महर्षि के निर्देशानुसार नाव उस पार जाने के लिए चल पड़ी। गंगा की मध्य-धारा में पहुँचने पर अत्यन्त तेज गर्जन-तर्जन सुनकर राम-लक्ष्मण चकित हो गये। महर्षि ने तब यह बताया कि यह गर्जन की तेज ध्वनि सरयू नदी के अत्यन्त वेग से गंगा में समाहित होने के कारण हो रही है। दोनों भाइयों ने हाथ जोड़कर अत्यन्त पवित्र भाव से दोनों नदियों को प्रणाम कर अपना सम्मान व्यक्त किया।

नाव सकुशल उस पार पहुँच गई। नाव से उतरकर महर्षि ने राम को सचेत किया 'पुत्र राम! सिद्धाश्रम के निकट हमलोग पहुँच गये हैं किन्तु बीच में ही 'ताड़का वन' है, जहाँ ताड़का निर्बाध विचरण करती है। अब सतर्क होकर हम आगे की यात्रा प्रारम्भ करेंगे।'

यात्रा पथ में एक शान्त एवं स्वच्छ स्थान को देखकर ऋषि ने सबको शान्तिपूर्वक बैठ जाने का निर्देश दिया।

अल्प विश्राम के पश्चात महर्षि ने शान्त चित्त से कहा, 'वत्स राम! धर्म का मूल तत्व जगत कल्याण है। तुम्हें गुरु वशिष्ठ के आश्रम में धर्मयुद्ध की शिक्षा मिली होगी। धर्मयुद्ध की अवधारणा है कि स्त्रियों पर शस्त्र प्रहार नहीं करना चाहिए एवं शस्त्रविहीन शत्रु पर भी शस्त्र प्रहार वर्जित है।'

'हाँ गुरुदेव, मुझे यही शिक्षा मिली है।'

'...लेकिन पुत्र राम, यह धर्मयुद्ध उस समय के लिए है जब विपक्षी भी धर्मयुद्ध के नियमों का पालन करता है और धर्मयुद्ध की मर्यादा में रहकर ही युद्ध करता है। तुम्हें बताना इसलिए आवश्यक है कि राक्षस किसी धर्मयुद्ध का पालन नहीं करते हैं। दूसरी बात है कि ताड़का है तो स्त्री किन्तु वह अत्यन्त क्रूर, निर्दयी और युद्ध लोलुप है। वह हत्या करते समय स्त्री, पुरुष का ध्यान नहीं करती है और निर्ममता से किसी की भी हत्या करने में संकोच नहीं करती है। अतएव वत्स, यदि ताड़का सामने पड़ती है तो यह मत संकोच करना कि वह निःशस्त्र है अथवा स्त्री है। यदि सामने पड़ने पर तुम उसे मार डालने में संकोच करोगे तो वह तुम्हे मार डालेगी। वत्स वह आततायी है, हत्यारी है, आतंकी है और पूरे जन-समुदाय की शत्रु है।'

'आपका निर्देश शिरोधार्य है गुरुदेव' शान्त चित्त से राम ने कहा।

'ताड़का आगे डेढ़ योजन का घेरा बनाकर रहती है। अब दिन ढ़लने को है। पूरा राक्षस समुदाय सायंकाल ही अपनी बस्ती से निकलकर वनक्षेत्र में शिकार करता है। रात में राक्षसों का उत्साह और बल बढ़ जाता है राम। बहुत अच्छा होगा यदि सन्ध्याकाल के धुँधलके में ही ताड़का से सामना हो जाय।'

अब हम लोग आगे की यात्रा प्रारम्भ करते हैं...।

...साथ में चल रहे संन्यासियों का रंग पीला पड़ गया। उनके मुखमण्डल पर भय और आतंक की छाया स्पष्ट दीखने लगी थी। राम जहाँ आने वाले अगले पल की प्रतीक्षा कर रहे थे वहीं लक्ष्मण राक्षसों से भिड़ने के लिए आतुर हो चले थे। गुरुदेव सहज और सतर्क थे। उनकी दृष्टि दूर-दूर तक जाकर किसी को खोज रही थी। वह प्रत्येक आहट पर चौकन्ने होकर आहट की ध्वनि को पहचानने का प्रयत्न कर रहे थे।

गुरुदेव सबसे आगे, उनके पीछे राम और लक्ष्मण तथा सबसे पीछे संन्यासियों का दल था। ऊँचे घने पेड़ों और सघन लताओं से घिरा यह वनक्षेत्र दिन के प्रकाश में भी धुँधला दीख रहा था। रह-रहकर जंगली जानवरों की आवाजें सन्नाटे को भंग कर रही थीं।

अचानक झुरमुठ के बीच से निकल रही आहट से महर्षि सतर्क हो गये। उनकी आँखें उसी दिशा में मुड़ गईं। उनका संदेह सच था। पेड़ों की ओट से पाँच आदमियों को निकलते देखकर महर्षि ने सबको सचेत कर दिया। वे निश्चिन्त इसी दिशा में आ रहे थे।

विशालकाय, काली, अर्द्धनग्न, असामान्य कद की स्त्री को देखकर

महर्षि पहचान गये। यह ताड़का ही थी।

महर्षि पर दृष्टि पड़ते ही ताड़का सचेत हो गई। उसका मुखमण्डल विकृत हो गया, आँखे लाल हो उठी और वह भयंकर क्रोध से हुँकार भरते चिल्ला उठी, 'यह तो सिद्धाश्रम वाला गुरु है। आज इसकी मौत ने इसे यहाँ तक पहुँचा दिया। अकस्मात धनुष-वाण से सज्जित दो नवयुवकों को गुरु के साथ देखकर थोड़ी देर के लिए सहमी किन्तु दूसरे ही क्षण वह भयानक गर्जना के साथ अपने साथियों को ललकारते हुए हिंसक पशु के समान आक्रमण के लिए दौड़ पड़ी।

महर्षि का स्वर गूँजा, 'राम! यही ताड़का है वत्स, इसका वध करो। सहज भाव से राम ने अपने धनुष पर प्रत्यंचा चढ़ाया और अत्यन्त तीव्र गति से तूणीर से वाण निकालकर प्रत्यंचा पर चढ़ाया और फिर प्रत्यंचा को कानों तक खींच कर लक्ष्य को साधते हुए छोड़ दिया। वायु वेग से बाण ताड़का के वक्षस्थल को चीरते हुए बाहर निकल गया। भयंकर आर्तनाद करते हुए ताड़का का शरीर भूमि पर गिर पड़ा। रक्त का फौव्वारा फूट पड़ा। असीम पीड़ा से कराहते, छटपटाते, थोड़ी ही देर में उसके प्राण छूट गये।'

... हतप्रभ, आतंकित उसके साथी राक्षस फिर युद्ध के लिए साहस नहीं जुटा पाये। भय से उनका चेहरा पीला पड़ गया। वे पीछे मुड़े और तीव्र वेग से अपनी बस्ती की ओर भागे।

महर्षि के मुख पर संतोष का भाव उभर आया था। उन्होंने सहज भाव से कहा 'वत्स राम! ताड़का का वध हो चुका है। उसका पार्थिव शरीर भूमि पर पड़ा है। सम्भव है उसके साथी अपनी बस्ती से अन्य साथियों को लेकर हथियार सहित आक्रमण के लिए पुनः लौटें। हम सतर्क होकर उनके लौटने की प्रतीक्षा करेंगे। अब अंधेरा भी हो चुका है और अंधेरे में यात्रा करना उचित नहीं है। अतएव आज रात्रि-विश्राम हमलोग यहीं करेंगे।'

संन्यासीगण शिविर व्यवस्था में जुट गये। उनका भय समाप्त हो गया था। उत्साह से भरे मुखमण्डल पर पुलक के भाव स्पष्ट दीख रहे थे। हर्ष विषाद से मुक्त राम ऐसे दीख रहे थे जैसे कुछ हुआ ही न हो किन्तु लक्ष्मण तो उमंग और उत्साह से ओत-प्रोत, रह-रहकर अट्टहास कर रहे थे।

रात बिना किसी घटना के निर्विघ्न समाप्त हो गई। राक्षसों ने आक्रमण का साहस नहीं किया। सम्भवतः वे अपने स्वयं की तथा अपने शत्रु की शक्ति का आकलन कर लेना चाहते थे।

दूसरे दिन प्रातःकाल सिद्धाश्रम के लिए पुनः यात्रा प्रारम्भ हुई।

प्रत्येक दिन की तरह महर्षि सबसे आगे तथा संन्यासियों का दल पीछे चल रहा था। रास्ता घने जंगलों के बीच से होकर जाता था। अतएव गुरुदेव ने सबको सतर्क रहने का निर्देश दे दिया था। राक्षसों से धर्मयुद्ध की आशा करना मृत्यु को निमंत्रण देना था। राक्षस कहीं से और किसी भी समय अचानक हमला कर अपने शत्रु को आतंकित और भयभीत कर उसे सम्भलने से पहले ही धराशायी करने की कला में पारंगत थे। यही उनकी युद्धनीति थी, जिसमें धर्म कहीं नहीं आता था। अपने शत्रु को येनकेन प्रकारेण मार डालना ही उनका धर्म था।

आज सिद्धाश्रम पहुँच जाने की प्रत्याशा में कदमों की गति तेज हो गई थी। मन में उत्साह था, किन्तु सबका विवेक जाग्रत एवं इन्द्रियाँ सचेत और सक्रिय थीं।

सूर्यास्त के पहले ही दल सिद्धाश्रम पहुँच गया। आश्रम के संन्यासियों को गुरुदेव के साथ राम और लक्ष्मण के आने की सूचना पहले से ही मिल गई थी और थोड़ी देर पहले ही ताड़का के वध होने की सूचना मिली। चारों ओर हर्ष एवं उत्साह का वातावरण था।

सिद्धाश्रम के मुख्यद्वार पर संन्यासियों ने आरती उतारकर गुरुदेव का स्वागत किया। धनुष-वाण से सज्जित, राम-लक्ष्मण को देखकर सदैव भयाक्रान्त रहने वाले मुनियों के अन्दर उत्साह आ गया। भय, जो उनके मुखमण्डल का स्थायी भाव हो गया था, आज वह कहीं तिरोहित हो गया।

महर्षि सिद्धाश्रम के अपने कक्ष में बैठ गये। उन्होंने राम और लक्ष्मण को भी वहीं सामने बैठ जाने का संकेत दिया।

महर्षि किंचित उद्विग्न थे। उन्होंने सूचना भेजकर आश्रम के उपाचार्य को निर्देशित कर दिया कि आश्रम के सभी संन्यासी भोजन पूर्व आश्रम के आंगन में अत्यन्त आवश्यक सूचना एवं परामर्श के लिए एकत्रित हों।

फिर राम से बोले, 'वत्स राम! सम्भावना है कि राक्षस पूरी तैयारी के साथ आज रात में आक्रमण करें। यह आक्रमण किसी भी समय हो सकता है।'

'आप निश्चिंत रहें गुरुदेव! कोई भी आक्रमणकारी यहाँ से जीवित नहीं लौटेगा।'

'भरोसा है पुत्र। मैं तुम्हारे पौरुष, शक्ति एवं युद्धकौशल से पूरी तरह आश्वस्त हूँ किन्तु मेरी सोच कुछ दूसरी है। मैं यहाँ के साधुओं, संन्यासियों, तपस्वियों एवं इस क्षेत्र के जन-जन में यह विश्वास पैदा करना चाहता हूँ कि राक्षस अपराजेय नहीं है, हमारी एकता उन्हें पराजित कर सकती है। यही हमारा अन्तिम

लक्ष्य है राम। सामान्यजन अपना आत्मबल और आत्मविश्वास खो चुका है। राक्षसों से युद्ध करने का साहस एवं इच्छाशक्ति समाप्त हो गई है। कितनी विडम्वना है राम कि किसी व्यक्ति या परिवार पर हुए आक्रमण के समय उसका पड़ोसी या बस्ती के लोग अकेला छोड़कर भाग जाते हैं। सामूहिकता समाप्त हो गई है। लोग मान बैठे हैं कि राक्षसों की शक्ति के सामने टिक जाना असम्भव है। मेरा लक्ष्य इसी असम्भव को सम्भव बनाना है। जन-जन के मन में उसके खोये हुए साहस, आत्मबल, आत्मविश्वास और सामूहिकता को लौटाना ही मेरी समस्त साधना का लक्ष्य है राम। जनता के इस मिथक को ध्वस्त कर देना है कि राक्षसों की शक्ति के सामने कोई टिक नहीं सकता।

वत्स राम! मैं लोगों के अन्दर यही विश्वास पैदा करने के लिए तुम दोनों भाइयों को यहाँ लाया हूँ। जनसहभागिता के बिना यह युद्ध अधूरा रहेगा, लक्ष्य से भटक जायेगा।

सबके एकत्रित होने की सूचना मिल गई। महर्षि, राम-लक्ष्मण को लेकर उद्‌बोधन के लिए चल पड़े।

उपस्थित सन्यासीगण ने करतल ध्वनि से महर्षि एवं राम-लक्ष्मण का स्वागत किया। सबको बैठने का सन्देश देकर महर्षि ने बोलना प्रारम्भ किया-

मेरे प्रिय आश्रमवासियों,

हम सभी ने चिन्तन, आत्मशन्ति और जगत कल्याण के निमित्त संन्यास धर्म एवं तपस्वी का जीवन अपनाया है किन्तु इस क्षेत्र में बसने वाले राक्षस हमें शान्ति से तपस्या भी नहीं करने दे रहे हैं। हमलोगों के साथ ही इस क्षेत्र के आमजन की सुखशान्ति और निर्भय होकर जीने का अधिकार भी छिन चुका है। लोगों के ऊपर अत्याचार करना, उन्हें आतंकित करना, हत्या करना, स्त्रियों का अपहरण एवं उनका शील भंग करना राक्षसों का नित्यप्रति का काम है। अब धर्मयुद्ध का समय आ गया है और धर्मयुद्ध में सहभागिता पूरे समाज का कर्त्तव्य है। अनवरत हो रहे अत्याचार के विरूद्ध खड़ा होना, हम सबका कर्त्तव्य है। इसी धर्मयुद्ध के निमित्त मैं अयोध्या जाकर महाराज दशरथ के दो पुत्रों राम और लक्ष्मण को लाया हूँ। मैंने जगत कल्याण की भावना से ही प्रेरित होकर धर्मयुद्ध की घोषणा कर दी है।

आपको समाचार मिल गया होगा कि राम ने महाबली ताड़का का वधा कर दिया है। शेष बचे राक्षसों से हम सभी साथ मिलकर युद्ध करेंगे। ताड़का-वधा के पश्चात राक्षस उद्वेलित होंगे और प्रतिशोध में किसी भी समय पूरी ताकत से

वे आश्रम पर आक्रमण कर सकते हैं; इसलिए आपके पास लाठी, डंडा या अन्य कोई भी हथियार हो, उसे धारण कर पूरी रात चौकस और सन्नद्ध रहें। टोलियाँ बनाकर बारी-बारी से पूरी रात आश्रम का चक्रमण करते रहें और अल्प सूचना पर प्रतिरोध के लिए तैयार रहें।

उत्साह से भरे उपस्थित संन्यासी विपुल उद्घोष से इस धर्मयुद्ध में भाग लेने का हुँकार भरने लगे। संन्यासियों का यह उत्साह और जयघोष, महर्षि ने इसके पहले कभी नहीं देखा था। हर्षित होकर पुनः बोलना प्रारम्भ किये-

'आश्रम के उपकुलपति से मेरा अनुरोध है कि वे विश्वस्त एवं सजग संदेशवाहकों को आज रात में ही सभी बस्तियों में भेजकर इस धर्मयुद्ध में भाग लेने के लिए आमजन को आमंत्रित कर दें। सभी अपने पास रखे हुए हथियारों के साथ आवें। उन्हें ताड़का वध का समाचार दे दिया जाय। राक्षसों को हम पराजित कर उन्हें शक्तिहीन कर देंगे ताकि इस क्षेत्र की सम्पूर्ण जनता को सुख-शान्ति और निर्भय होकर जीने का नैसर्गिक न्याय मिल सके। विजय हमारी ही होगी क्योंकि धर्मयुद्ध में न्याय और सत्य को ही अन्तिम विजय मिलती है। ईश्वर आप सबकी रक्षा करें।'

महर्षि विश्वामित्र के सन्देश, राम-लक्ष्मण की उपस्थिति और ताड़का वध की अकल्पनीय सूचना से आश्रमवासियों का मनोबल आकाश की ऊँचाइयों को छूने लगा था। जो संन्यासी राक्षसों का नाम सुनकर ही भयाक्रान्त हो काँपने लगते थे, वही आज इस धर्मयुद्ध में राक्षसों से युद्ध के लिए व्यग्र हो उठे।

रात में शयन से पूर्व महर्षि ने सम्पूर्ण स्थिति पर विचार किया। राक्षसों का आक्रमण अवश्यंभावी है। पराजय स्वीकार करना उनके स्वभाव में नहीं है। उनके लिए युद्धनीति तैयार करनी होगी। बचाव के साथ आक्रमण की नीति ही उपयुक्त होगी। आक्रमण ही बचाव की सबसे भरोसेमंद नीति है। और गुरुदेव ने सम्पूर्ण युद्ध-योजना का अचूक प्रारूप मन ही मन निश्चित कर दिया।

प्रातःकाल स्नान एवं पूजा-अर्चना के बाद, राम ने महर्षि को प्रणाम करते हुए सूचना दी 'गुरुदेव आश्रम के बाहर गाँव-गाँव से जनसमुदाय उमड़ पड़ा है। सभी के हाथ में कोई न कोई हथियार है। सभी उत्साह से भरे धर्म-युद्ध के लिए उद्यत हो रहे हैं। आप यज्ञ प्रारम्भ करें गुरू देव।'

'राम! राक्षस, यज्ञ की आहुति के धुएँ को युद्ध की चुनौती के रूप में और पूर्णाहुति को अपनी पराजय के रूप में देखते हैं। यज्ञ प्रारम्भ होते ही राक्षसों का आक्रमण निश्चित रूप से होगा, अतएव धर्म-युद्ध में आये सभी वृद्धों,

बच्चों एवं स्त्रियों को सुरक्षित अतिथि गृह में रहने की व्यवस्था कर दी जाय। युद्ध में कुशल एवं चपल वयस्क ही भाग लेंगे। युद्ध कौशल की बारीकियों के संबंध में तुम अन्यों की अपेक्षा अधिक निपुण हो। यह युद्ध तुम्हारे ही नेतृत्व में लड़ा जायेगा। तुम युद्ध की व्यूह रचना करो पुत्र।'

'उत्तरदायित्व स्वीकार है गुरुदेव' राम ने कहा।

गुरुदेव मन्द गति से यज्ञशाला की ओर चल दिये। आश्वस्ति से भरा उनका मुखमण्डल, उत्तेजना से मुक्त, सहज और आशावान दीख रहा था। सम्भवतः अपनी दिव्यवृष्टि से उन्होंने युद्ध के परिणामों का आकलन कर लिया था। इसलिए निश्चिन्त भाव से यज्ञ की बेदी पर बैठ गये। यज्ञ प्रारम्भ हो गया। उनके पार्श्व में बैठे पंडितों ने मंत्रोचार से वातावरण को गुँजायमान कर दिया। अग्नि प्रज्ज्वलित हुई। आहुति से अग्निकुण्ड में धुआँ उठने लगा और धीरे-धीरे आकाश की ऊँचाइयों को छूने लगा।

महर्षि के निर्देशानुसार व्यवस्था पूर्ण हो गई थी। युद्ध में भाग ले रहे वयस्क एवं उत्साही युवकों के हाथ में तलवार, दाव, बरछी, भाले, तीर-कमान, लाठी, डंडा लहरा रहे थे। राम ने व्यूह रचना पूरी कर ली थी।

सिद्धाश्रम के मुख्यद्वार की कमान राम ने स्वयं सम्भाल ली थी। दाहिने पार्श्व में लक्ष्मण तथा बाँयें पार्श्व में अत्यन्त उत्साही युवक शत्रुजीत के हाथ में उत्साही युवकों की कमान थी। आश्रम के साधु संत और तपस्वी आश्रम के चारों तरफ अनवरत चक्रमण कर रहे थे। यह युद्ध नहीं आनन्द का उत्सव हो गया था। अस्त्र-शस्त्र से सज्जित युवक, राक्षसों पर टूट पड़ने के लिए अधीर हो रहे थे।

अचानक संदेशवाहक दौड़ता हुआ राम के पास पहुँचा 'हे राजकुमार! यज्ञ के धुएँ को देखकर राक्षस अपनी बस्ती से निकलकर कोलाहल करते हुए तीव्र वेग से आश्रम की ओर आ रहे हैं। उनके हाथों में घातक हथियार और आँखों में प्रतिशोध की आँच धधक रही है।

राम चौकन्ने हो गये। चारों तरफ सूचना प्रसारित कर दी गई। युद्ध के लिए सभी सन्नद्ध हो गये। सबकी आँखें मुख्य द्वार पर राक्षसों के आने की प्रतीक्षा करने लगीं। कोलाहल की ध्वनि बढ़ती जा रही थी। लगता है, राक्षस निकट आ गये हैं। और अचानक राम ने देखा, राक्षस विद्युतवेग से मुख्यद्वार की ओर ही आ रहे हैं। राक्षसों का नेतृत्व दो दैत्याकार राक्षस कर रहे हैं। दोनों के एक हाथ में ताजा कटा हुआ, खून टपकता नरमुण्ड तथा दूसरे हाथ में विशालकाल तलवार थी। शस्त्र सज्जित राक्षस नवयुवक अट्टहास और भयानक आवाजें निकाल

रहे थे। क्रोध से तमतमाये उनकी आँखों में प्रतिशोध की आग जल रही थी।

वे अत्यन्त निकट आ गये थे। विलम्ब और असावधानी अब घातक होगी। राम ने अपनी तूणीर से एक साधारण वाण निकालकर अपने धनुष की प्रत्यांचा पर चढ़ाया। फिर कानों तक खींच कर लक्ष्य की ओर छोड़ दिया। सामने नेतृत्व करता हुआ नवयुवक मारीच था, उसने करवट बदल लिया और वायुवेग से आता हुआ वाण उसके दाहिने कन्धे को बेधते हुए बाहर निकल गया। वह भीषण पीड़ा से छटपटाते हुए पृथ्वी पर गिर पड़ा। उसके हाथों से तलवार और नरमुण्ड छिटक गये। वह फिर किसी तरह सम्भला और बेतहाशा मैदान छोड़कर तीव्र वेग से पीछे भागने लगा।

राम को किसी ने बताया कि नेतृत्व कर रहा दूसरा राक्षस ही सुबाहु है जो ताड़का का भाई है। सुबाहु को देख राम सचेत हो गये। लक्ष्य से अब नहीं चूकना है। उन्होंने तूणीर से भयानक मृत्युवाण निकाल कर प्रत्यांचा पर चढ़ाया, फिर कानों तक खींचकर लक्ष्य साधते हुए छोड़ दिया। मृत्युवाण वायुवेग से सुबाहु के वक्षस्थल को चीरता हुआ, बाहर निकल गया। शोणित धारा फूट गई। भयानक और असह्य पीड़ा से छटपटाते हुए वह भूमि पर गिर पड़ा। उसकी आँखे निस्तेज होने लगीं और सिर झुककर एक तरफ लुढ़कने लगा। अवाक, हतप्रभ राक्षस नवयुवक नेतृत्वविहीन हो गये। उनका धैर्य और मनोबल टूट गया। वे उलटे पाँव अपनी बस्ती की ओर तीव्र गति से भागने लगे।

युद्ध करने का अवसर नहीं मिलने के कारण लक्ष्मण अधीर हो उठे। वे उलटे पाँव भाग रहे राक्षसों को युद्ध के लिए ललकारने लगे किन्तु राक्षसों का पैर उखड़ चुका था, उनका मनोबल टूट चुका था।

लक्ष्मण और शत्रुजीत, राक्षसों के लौटने की और प्रतीक्षा नहीं कर सके। दोनों पार्श्व में खड़े नवयुवकों के साथ भागते हुए राक्षसों पर पूरे वेग से टूट पड़े। प्राण बचाने को व्याकुल राक्षस मुड़-मुड़कर आसन्न संकट का आकलन करते और अपनी गति को तेज और तेज करते हुए घने जंगलों के बीच समा गये... ।

... धीरे-धीरे अंधेरा होने लगा था। घने जंगलों के बीच अन्धेरे में जाना अपने को संकट में डालना था। सभी नवयुवक रूक गये और सिद्धाश्रम की ओर अगले निर्देश के लिए चल पड़े।

विश्वामित्र ने अग्निकुण्ड में अन्तिम आहुति डाली और प्रज्ज्वलित अग्निशिखा यज्ञ के पूरा होने की साक्षी बनी। महर्षि का मुखमण्डल हर्ष से दमकने

लगा। बरसों से यज्ञ के पूरा होने की प्रतीक्षा कर रहे थे महर्षि किन्तु हर बार विघ्न, हर बार हताशा, बार-बार निराशा ही झेलनी पड़ी थी। राम-लक्ष्मण समर्थ हैं। उनका आना निष्फल नहीं हुआ। साधना पूरी हुई। लगता है, राक्षसों का पैर उखड़ चुका है।

महर्षि यज्ञ-वेदी से उठे। यज्ञशाला के द्वार पर ही उन्हें सूचना मिल गई 'राक्षस युद्ध में पराजित होकर अपनी बस्ती में भाग गये। सुबाहु, राम के बाणों को सह नहीं सका, वह युद्धभूमि में मारा गया। घायल मारीच अपना प्राण बचाकर दक्षिण दिशा में बेतहाशा भागते हुए देखा गया है। राम-लक्ष्मण पूरे जनसमुदाय के साथ बैठकर आपके दिशा-निर्देश की प्रतीक्षा कर रहे हैं।

विश्वामित्र की आँखें सजल हो गईं। मात्र एक दिन में पूरा क्षेत्र राममय हो गया। जो ऋषि-मुनि, तपस्वी, आमजन राक्षसों का नाम सुनकर काँपने लगते थे, डर से मुखमण्डल पीला पड़ जाता था आज वही लोग राक्षसों का पीछा करते उनकी बस्ती तक पहुँच गये और उन्हीं पीड़ित व्यक्तियों के भय से काँपते राक्षस घने जंगलों में छिप गये। यह तो अकल्पनीय, अविश्वसनीय है। सचमुच जनसमुदाय कमजोर नहीं होता है, नेतृत्व ही उसे सबल और निर्बल बनाता है। राम ने जनसमुदाय को सबल बना दिया और वह भी केवल एक दिन में।

सधे कदमों से महर्षि कोलाहल करती जनता के बीच पहुँच गये। फिर स्नेह से अभिभूत होकर राम और लक्ष्मण को अपने अंकों में समेट लिया।

'तुम्हारी वीरता से अत्यन्त प्रसन्न हूँ राम। तुम सबल और अजेय हो, तुम आर्यकुल गौरव हो, तुम न्यायपथगामी हो पुत्र राम। तुमने आमजनों में शक्ति और साहस की संजीवनी भर दी। जन-जन को सबल बना दिया। तुम धन्य हो राम।

राम गुरु-वाणी को अमृत की तरह पीते रहे और फिर गुरु चरणों से लिपट गये।

'गुरुदेव! अभी कार्य अधूरा है। राक्षस रण छोड़कर अवश्य भाग गये किन्तु उनकी शक्ति अभी क्षीण नहीं हुई है। उनके घातक हथियार अभी नष्ट नहीं हुए हैं। पूरी सम्भावना है कि वे फिर संगठित होकर दुगुनी शक्ति से नये नायक के नेतृत्व में सिद्धाश्रम पर आक्रमण कर दें, जनता पर अन्याय और अत्याचार को और तीव्र कर दें। वे प्रतिशोध के लिए तड़प रहे होंगे, इसलिए उनके शमन और आगे के युद्ध के लिए आपका आदेश और दिशा-निर्देश चाहिए गुरुदेव।

'मेरा आकलन भी यही है राम। राक्षसों का प्रतिशोध अत्यन्त

भयानक और घातक होगा। उनको निःशस्त्र करना और उनके मनोबल को क्षीण करना जनहित में है और समय की आवश्यकता है ताकि वे पुनः आक्रमण करने का साहस नहीं जुटा सकें। तुम योजनाबद्ध होकर आगे बढ़ो राम। मेरा आशीर्वाद तुम्हारे साथ है।

दूसरे दिन राम और लक्ष्मण सिद्धाश्रम से बाहर अन्तिम निर्णायक युद्ध के लिए चल पड़े और पीछे थे हजारों की संख्या में नवयुवक उमंग और उत्साह से भरे हुए और अपने-अपने हथियारों को सहेजे हुए।

राम ने एक ऊँचे टीले पर खड़े होकर सबको रूक जाने का सन्देश दिया। फिर पूरे जनसमुदाय को टोलियों में बाँटा और प्रत्येक टोली का एक नायक नियुक्त किया। टोलियों को अलग-अलग दिशाओं के लिए नियुक्त किया और सबको समवेत संदेश देते हुए कहा, 'बहादुर मित्रों! बहुत सम्भावना है कि राक्षस घने जंगलों में कहीं छिपे हों या अपनी बस्तियों में छिपकर प्रतिघात की तैयारी में लगे हों। इसलिए प्रत्येक टोली अत्यन्त सतर्क होकर आगे बढ़े। यदि कहीं राक्षसों के होने की संभावना लगे तो टोली का नायक मुझे संदेश पहुँचा दे। मैं केन्द्र में रहूँगा ताकि मुझे संदेश मिलने में विलम्ब न हो। युद्ध का नेतृत्व मैं करूँगा।

दूसरा महत्त्वपूर्ण कार्य है उनको निःशस्त्र करना। इसलिए यदि उनकी बस्तियों में अस्त्र-शस्त्र मिले तो उनको एकत्र कर ले आना है। सभी कार्य अत्यन्त सावधानी से करना है। अपने विवेक को सदैव जाग्रत रखना है।

उद्देश्य पूरा होने के बाद हम सभी लोग सूर्यास्त के पहले पुनः इसी स्थान पर मिलेंगे।

सभी टोलियाँ कोलाहल करती निर्दिष्ट दिशा में चल पड़ीं। प्रत्येक टोली घने जंगलों में सतर्कतापूर्वक टोह लेते बस्तियों की ओर धीरे-धीरे बढ़ रही थी। कहीं से कोई अवरोध नहीं। टोलियाँ बस्तियों तक पहुँच गई किंतु चारों तरफ सन्नाटा पसरा था। वृद्ध, नवजात, बच्चे, स्त्रियाँ कोई दृष्टि में नही आ रहा था। क्या सब अपने-अपने आवासों में छिप गये हैं? आवासों में घुसने का कोई निर्देश तो मिला नहीं है, राजकुमार राम से अनुमति लेनी पड़ेगी।

और अनुमति मिल गई, अत्यन्त सतर्कतापूर्वक घरों के भीतर जाने की।

राम, लक्ष्मण के साथ टीले पर बैठ गये। धीरे-धीरे टोलियाँ आने लगीं। टोलियों के नायक संग्रह की हुई वस्तुएँ राम के समक्ष समर्पित करने लगे- सैकड़ों डरी, सहमी, काँपती अपहृत बन्धक बनाई गईं बालायें; नाना प्रकार के

हथियार-तलवार, बरछी, भाले, लाठी, तीर-कमान; चाँदी सोने के बहुमूल्य आभूषण, शराब बनाने के भाँड़ और संग्रहित विष के घड़े। राक्षस कोई नहीं। भयभीत राक्षस-समाज बस्तियाँ छोड़कर भाग गया था, शायद नई शक्ति, नई ऊर्जा, नये नेतृत्व के लिए, अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए।

राम विचारमग्न हो गये, प्रजाजनों पर इतनी क्रूरता, इतनी निर्दयता और इन निर्बल-निरीह एवं असहाय प्रजाजनों की सहायता के लिए कोई सामने नहीं आया, इससे बड़ा अन्याय और क्या हो सकता है? राम की पीड़ा, राम का विषाद घनीभूत होता गया। और राम के मन में अन्याय के प्रतिरोध का निश्चय आकार लेता गया। इस अन्याय का प्रतिकार ही अब राम के जीवन का लक्ष्य होगा। प्रजाजन की पीड़ा से मुक्ति से बड़ा कोई राजधर्म नहीं। प्रजाजन पर जो अन्याय हुआ है उसके परिमार्जन और प्रायश्चित के लिए कहीं मेरा जीवन छोटा न पड़ जाय।

अचानक लक्ष्मण के प्रश्न से राम की तन्द्रा भंग हुई, 'भइया, अब आगे क्या किया जाय?'

और राम का उद्घोष हुआ- 'मेरे प्रिय बन्धुओं, आपकी जीत पर आपको बधाई।'

'अपहृत देवियों को सम्मानपूर्वक उनके माता-पिता को सौप दिया जाय। सभी नायक अपने संग्रह के हथियार अपनी बस्ती की सुरक्षा के लिए अपने साथ लेते जाँय। आभूषण अभी सिद्धाश्रम में रख दिये जाँय और इनके विक्रय से प्राप्त धन असहाय, निर्धन एवं पीड़ितजनों पर व्यय कर दिया जाय। मद्य बनाने के भाँड़ तथा विष के घड़े नष्ट कर दिये जाँय।

राम आपको आश्वस्त करता है कि राक्षसों के विरूद्ध इस न्याय-युद्ध में आप अकेले नहीं रहेंगे।

राम के मन में आश्वस्ति का भाव आया। राक्षसों द्वारा किये जा रहे जिस अन्याय और उत्पीड़न के उन्मूलन के लिए गुरुदेव उसे अयोध्या से लाये, वह अभी आंशिक रूप से ही पूरा हुआ है। राक्षस युद्ध का मैदान छोड़कर अवश्य भाग गये किन्तु वे फिर लौटेंगे। न्याय-अन्याय का यह युद्ध अनवरत चलता रहेगा। अन्याय के विरूद्ध संघर्ष ही अब उनके जीवन का लक्ष्य होगा। और यह लक्ष्य देकर गुरुदेव ने उनके ऊपर अनुग्रह किया है।

और राम चल पड़े सिद्धाश्रम की ओर, पीछे था उल्लसित अपार जनसमूह, उत्साह से भरा हुआ।

गुरुदेव अपनी कुटिया में राम और लक्ष्मण की प्रतीक्षा कर रहे थे। राक्षसों से निर्णायक युद्ध के परिणामों पर उनकी दृष्टि लगी हुई थी। जनक्रान्ति के सहभागियों में आत्मविश्वास का लय और उत्साह की गहराई को परखने के लिए, महर्षि व्यग्रता से भीतर-बाहर आ-जा रहे थे।

अचानक कानों में कोलाहल सुनाई दी। महर्षि सतर्क हो गये। ध्वनि की तीव्रता बढ़ती जा रही थी और महर्षि की उत्कंठा शनैः शनैः शान्त होने लगी थी। कोलाहल का उन्माद और ध्वनि की तीव्रता विजय का संकेत दे रही हैं।

श्रद्धा से अभिभूत राम-लक्ष्मण कुटिया में पहुँचकर गुरुचरणों से लिपट गये। स्नेहासिक्त गुरु ने दोनों भाइयों को अपने पार्श्व में भींच लिया।

गुरुदेव के मुखमण्डल पर संतुष्टि का भाव था। वे सधे कदमों से धीरे-धीरे सिद्धाश्रम के आंगन में पहुँच गये जहाँ अधीर जनसमूह उनके आशीर्वाद की प्रतीक्षा कर रहा था।

मेरे प्रियजन,

'मेरा अभीष्ट पूरा हो गया। राक्षस भय से मैदान छोड़कर भाग गये। आपकी एकता, साहस और आत्मविश्वास को देखकर राक्षस पुनः इस क्षेत्र में लौटने का साहस नहीं करेंगे, ऐसा मेरा विश्वास है। सिद्धाश्रम का यह अंचल अब भयमुक्त और राममय हो गया है। जहाँ राम हैं, वहीं शक्ति है और जहाँ शक्ति है, वहाँ भय नहीं है, निराशा नहीं है, कुंठा नहीं है...।

...सिद्धाश्रम में मेरे ठहरने का लक्ष्य पूरा हो गया है, प्रियजनों! अतएव कल प्रातःकाल मैं अपने मूल आश्रम में लौट जाऊँगा। निरूद्देश्य मेरा ठहरना उचित नहीं है।'

चमकती आँखे सहसा विषाद से भर गईं। अवाक! सभी एक-दूसरे का मुँह देखने लगे। महर्षि की अनुभवी आँखों से कुछ छिपा नहीं रह सका। महर्षि बोल उठे, 'प्रियजनों! आप दुःखी न हों। आपकी एकता और साहस के सामने अब राक्षस ठहर नहीं सकेंगे। फिर भी आपको जब भी आवश्यकता होगी, यह विश्वामित्र राम के साथ उपस्थित रहेगा। यह विश्वामित्र का वचन है।'

'गुरुदेव, मुझे भी कल अयोध्या लौट जाने की आज्ञा दीजिए। राम ने विनयपूर्वक कहा।'

गुरुदेव विचारमग्न हो गये। राम के बिना मेरा अन्वेषण अधूरा रह जायेगा। इससे भी बड़ा लक्ष्य है मेरे समक्ष- आर्यजनों की एकता और सौहाद्रता की और यह स्थापित सर्वमान्य, निर्विनाद जननायक के बिना सम्भव नहीं होगा।

राम जननायक के गुणों के वाहक हैं। राम के धैर्य, धर्म विनयशीलता, न्याय, साहस और उसकी इच्छाशक्ति को मैंने अपनी आकांक्षाओं के अनुरूप पाया है, अब इसे सार्वभौमिक स्तर पर स्वीकार कराने के मेरे लक्ष्य का अवसर आ गया है। शायद विधि ने ही यह अवसर दे दिया है।

महर्षि के विचारों की तन्द्रा टूटी, प्रकृतस्थ हुए और सहज भाव से बोले, 'पुत्र राम, मिथिला नरेश राजा जनक ने अपनी बड़ी पुत्री जानकी के स्वयंवर-समारोह में सम्मिलित होने के लिए मुझे भी आमंत्रित किया है। समारोह में आर्यावर्त के अनेक राजा एवं राजकुमार उपस्थित होंगे। मैं तुमलोगों को भी साथ ले चलना चाहता हूँ।'

राम के बोलने के पहले ही लक्ष्मण मुखर हो गये 'गुरुदेव! यह तो अत्यन्त प्रसन्नता की बात है। स्वयंवर का समारोह अद्‌भुत होगा, मुझे तो उसे देखने की प्रबल इच्छा हो रही है गुरुदेव। इसके साथ ही यात्रा पथ में प्रकृति का अनुपम सौन्दर्य भी देखने को मिलेगा। अयोध्या के परकोटे में रहकर यह सम्भव नहीं हो सकेगा गुरुदेव।'

राम मुस्कराने लगे। फिर बोले, 'जैसी आपकी आज्ञा गुरुदेव।'

विश्वामित्र उल्लसित होकर सहज भाव से बोले, 'कल प्रातःकाल ही हमलोग जनकपुर के लिए प्रस्थान करेंगे पुत्र राम-लक्ष्मण।'

द्वितीय खण्ड

विश्वामित्र अपने कक्ष से बाहर निकले। राम-लक्ष्मण पहले से ही तैयार होकर प्रतीक्षारत थे। दोनों भाइयों ने गुरुदेव के चरणों में प्रणाम किया। पुलकित गुरुदेव ने स्नेह से आशीर्वाद देते हुए कहा, 'चलो वत्स, जनकपुर की यात्रा प्रारम्भ करते हैं।'

महर्षि के पीछे राम-लक्ष्मण और सबके पीछे संन्यासियों का वही दल था जो अयोध्या की यात्रा में महर्षि के साथ था। महर्षि सबके साथ आश्रम के आँगन में पहुँचे। विस्मयकारी दृश्य था। आश्रम के उपकुलपति संन्यासियों के साथ महर्षि को विदा करने के लिए खड़े थे। सबकी आँखों में महर्षि और राम-लक्ष्मण के लिए कृतज्ञता के आँसू उमड़ रहे थे। महर्षि ने ही मौन तोड़ा, आप सबके लिए एक सन्देश है 'राम ने इस क्षेत्र की युवा शक्ति को जीवंत, ऊर्जावान और उम्मीदों से भर दिया है; आप सब इस आशा के दीप को जलाये रखिएगा।' उपकुलपति ने महर्षि को प्रणाम किया एवं सबकी ओर से मंगलमय यात्रा के लिए शुभकामना दी। महर्षि ने सबको आशीर्वाद दिया और सिद्धाश्रम के मुख्य द्वार की ओर बढ़ चले।

सिद्धाश्रम के मुख्य-द्वार के आगे अद्‌भुत दृश्य था। पथ के दोनों ओर गाँवों एवं छोटी बस्तियों से पहुँचे, पुरुष, स्त्री, बच्चे, बूढ़े, नवजवान अश्रुपूरित नेत्रों से अपने मुक्तिदाता को विदा करने के लिए हाथ जोड़े खड़े थे। आमजन के मुखमण्डल पर मुक्ति का सुख, मुक्तिदाता के प्रति कृतज्ञता और छोड़कर जाने का विषाद् झलक रहा था। वहीं रह-रहकर भय की पीड़ा भी उभर आती थी। लोग हाथ से पुष्प की वर्षा कर सम्मान व्यक्त कर रहे थे। बीच-बीच में महर्षि और राम-लक्ष्मण की जय-जयकार से आकाश गुँजायमान हो रहा था। महर्षि जनसमुदाय के स्नेह, सम्मान और श्रद्धा से अभिभूत थे। राम आमजन की आँखों में उमड़े प्रेम से द्रवित हो उठे थे, आँखे भर आईं थीं, किन्तु लक्ष्मण उन्मुक्त होकर आमजन को कुतूहल से देख रहे थे...।

...धीरे-धीरे मानव बस्तियाँ समाप्त होने लगीं। आगे सघन वनों के बीच से रास्ता था। महर्षि धीरे-धीरे सहज होने लगे थे। राक्षसों के अत्याचारों से मुक्त समाज की जो कल्पना की थी, उसके आंशिक पूर्ति का सुख और संतोष था, वहीं राम का अत्याचार और अन्यायमुक्त मानव समाज के निर्माण का निश्चय दृढ़ से दृढ़त्तर होता जा रहा था।

पथ का मौन अचानक भंग हुआ। महर्षि बोल उठे 'वत्स राम! आगे गंगा जी को पारकर मिथिला राज्य की सीमा में हम लोग प्रवेश करेंगे। वैसे यह पूरा क्षेत्र तीन राज्यों की सीमाओं का मिलनबिन्दु है। सरयू नदी जहाँ गंगा के साथ संगम बनाती है वह 'कोसल' राज्य की पूर्वी सीमा है। संगम बिन्दु से आगे बढ़ने पर गंगा के दाहिने पार्श्व में 'अंग' राज्य है, जिसमें इस समय हमलोग मार्ग में हैं तथा गंगा नदी के वाम पार्श्व में जिसमें हमलोग आगे की यात्रा करेंगे 'मिथिला' प्रदेश है।'

'गुरुदेव, गंगा नदी को आर्यावर्त में बहने वाली सभी नदियों में श्रेष्ठ क्यों कहा जाता है?' लक्ष्मण ने बीच में ही हस्तक्षेप किया।

'वत्स लक्ष्मण! जिस तरह माता का दूध पवित्र, गुणकारी और अमृत समान माना जाता है उसी तरह माँ गंगा का जल भी अत्यन्त पवित्र, पुण्य सलिला, रोगनाशक, निर्मल और अमृत के समान होता है। गंगा जीवनदायिनी हैं, करोड़ों नर-नारियों को जीवन एवं असंख्य जीव-जन्तुओं को शरण और जीवन देती हैं। जीवन तो माँ ही देती हैं वत्स!; इसीलिए गंगा को हमारे धर्मशास्त्रों नें 'माँ' का रूप माना है। जड़ी-बुटियों से घुलित गंगा जल बलवर्धक एवं रोगनाशक होता है। गंगा जल पीने एवं इसमें स्नान करने से मृत्युलोक से मुक्ति मिलती है, ऐसा विश्वास किया जाता है।'

इसके वाम पार्श्व में रामगंगा, गोमती, सरयू, गण्डकी, वागमती, कोसी एवं महानन्द नदियाँ तथा दाहिने पार्श्व में यमुना, तमसा, सोन तथा पुनपुन नदियाँ इसमें समाहित होती हैं और समाहित होने के बाद इन नदियों का सम्पूर्ण जल भी गंगामय हो जाता है। इस पृथ्वी लोक में गंगा के अवतरण की कथा तो तुमने सुनी होगी, वत्स लक्ष्मण?

'नहीं गुरुदेव! कृपा कर मुझे सुनावे। कथा सुनना मुझे बहुत अच्छा लगता है।'

सुनो पुत्र, एक बार श्रेष्ठ संत कपिलमुनि घनघोर तपस्या में लीन थे। उन दिनों राजा सगर का साम्राज्य था। तप और तपस्या के महत्व से अंजान राजा सगर के साठ हजार पुत्रों ने उपद्रव मचाकर कपिलमुनि की तपस्या को भंग कर दिया। मुनि अत्यन्त क्षुब्ध एवं क्रोधित हुए और उन्होंने अपने तपोबल से राजा सगर के साठों हजार पुत्रों को भस्म कर राख में परिवर्तित कर दिया। शोक संतप्त

राजा सगर ने पुत्रों की मुक्ति के लिए मुनि से बहुत अनुनय विनय किया। तब मुनि ने कहा कि यदि स्वर्गलोक से गंगाजी पृथ्वी पर अवतरण करेंगी तब उनके जल से संतृत्प होकर आपके सभी पुत्र शाप मुक्त हो जायेंगे और उनकी मुक्ति भी हो जायेगी। कालान्तर में उसी कुल में राजा भागीरथ का जन्म हुआ। उन्होंने अपने पूर्वजों की मुक्ति के लिए गंगा जी को पृथ्वी पर लाने के लिए भगवान ब्रह्मा की घनघोर तपस्या की। ब्रह्मा जी प्रसन्न हुए और गंगा को पृथ्वी पर भेजने के लिए सहमत हुए, किन्तु गंगा के वेग को सम्भालने की शक्ति पृथ्वी में नहीं थी। तब देवों के देव महादेव ने गंगा के वेग को अपनी जटा में बाँधकर वेग को सीमित कर दिया और माँ गंगा ने पृथ्वी पर अवतरित होकर राजा सगर के पुत्रों को मुक्ति दिलाई। गंगा अवतरण की यही कथा मैंने अपने गुरूओं से सुनी है पुत्र।

गंगा तट आ गया था। गंगा की विशालता, अद्‌भुत शीतल जल और प्रवाह बेग से अभिभूत राम-लक्ष्मण ने हाथ जोड़कर माँ गंगा को प्रणाम किया। तट पर लगी सुन्दर नाव में महर्षि के साथ सभी यथास्थान बैठ गये। महर्षि का संकेत पाकर नाव चल पड़ी। राम गंगा की लहरों को बार-बार छूकर आनन्दित हो रहे थे किन्तु महर्षि इन सबसे अनभिज्ञ पुरानी यादों में खो गये थे। मुखमण्डल पर सहजता की जगह विषाद की स्पष्ट छाया साफ दीख रही थी। राम की आँखों से गुरुदेव का विषाद छिपा नहीं रहा। राम ने पूछ दिया, 'गुरुदेव आप चिन्तामग्न दीख रहे हैं।'

महर्षि सहसा नींद से जगे, 'हाँ पुत्र वर्तमान की घटना ही इतिहास बन गई है। आज बहुत दिनों के बाद जब मैं इस क्षेत्र में आया हूँ तो उन घटनाओं की याद से मन पुनः व्यथित हो आया है। पुत्र राम! अत्याचार और उत्पीड़न की घटनाएँ केवल राक्षसों द्वारा ही नहीं होती है बल्कि युगों से सबल निर्बल पर, धनवान निर्धन पर, अत्याचारी असहायों पर करता रहा है। आमजन के पास उत्पीड़न सहने के अतिरिक्त कोई विकल्प नहीं होता है।

'किसी विशेष घटना से आप व्यथित हैं गुरुदेव! क्या मैं जान सकता हूँ।'

'यह भी एक सबल की निर्बल पर की गई क्रूरतम अत्याचार की वीभत्स कथा है पुत्र राम'।

'मेरी उत्सुकता और मत बढ़ाइये ऋषिवर, कथा सुनने को मेरा मन

बेचैन हो रहा है।'

नदी का तट आ चुका था। नाविकों ने नाव किनारे लगा दिया। बिना बोले मौन ही उतरे ऋषि। उनके पीछे राम, लक्ष्मण और संन्यासी मण्डल भी नाव से नीचे उतर आया। महर्षि ने सबके साथ आगे की यात्रा प्रारम्भ की।

'कथा को कहिए न गुरुदेव' लक्ष्मण ने आग्रह किया।

'कथा अवश्य कहूँगा पुत्रों, सुनो'।

सहसा मुनि का कण्ठ अवरूद्ध हो गया। आँखे सजल हो गई। वाणी विहीन हो गये ऋषिवर।

ऋषि को सहज होने में समय लगा। फिर कहना प्रारम्भ किया, 'पुत्र राम, हो सकता है तुमने भी यह कहानी सुनी होगी, किन्तु मैं इसे पुनः कहना चाहता हूँ।

'मिथिला प्रदेश ज्ञान का केन्द्र रहा है और ज्ञान का परस्पर आदान-प्रदान गुरूकुलों में सामान्य प्रक्रिया होती है। ऋषि गौतम भी इसके अपवाद नहीं थे। बहुत दिनों से ज्ञान सम्मेलन के आयोजन का सपना पाल रखे थे। सम्मेलन की तिथि निर्धारित हो गई थी। सात दिनों तक चलने वाले इस सम्मेलन में न केवल मिथिला प्रदेश बल्कि प्रदेश के बाहर के अनेक प्रख्यात ऋषि-मुनि अपनी अपनी शिष्य मंडली के साथ पहुँच गये। ऋषि गौतम को मिथिला नरेश का राजाश्रय प्राप्त था। स्वाभाविक था कि इस सम्मेलन के संरक्षक राजा जनक ही थे। सम्मेलन के प्रारम्भ होने के एक दिन पहले राजा जनक के पहुँच जाने से सम्मेलन की गरिमा द्विगुणित हो गई।

राजा जनक के स्वयं के पास ज्ञान का भंडार था। राजा रहते हुए भी उनका जीवन एक योगी की तरह था। उनके स्वयं का आचार एवं व्यवहार राज्योचित आडम्बर और प्रदर्शन से दूर सहज स्वाभाविक और सर्वसुलभ था। ऋषिगण अपने शिष्यों को अन्तिम शिक्षा के लिए राजा जनक के पास ही भेजा करते थे।

राजा जनक ने गौतम को बतलाया कि उनके माध्यम से सम्मेलन में सम्मिलित होने के लिए देवराज इन्द्र को जो निमंत्रण भेजा गया था उसे उन्होंने स्वीकार कर लिया है और वे कल सम्मेलन प्रारम्भ होने के पूर्व ही यहाँ पहुँच जायेंगे। गौतम अतिप्रसन्न हुए। उनके सम्मेलन की मान्यता न केवल प्रदेश में बल्कि

देवलोक से भी मिलने जा रही थी।

देवराज इन्द्र के स्वागत और विश्राम स्थल की दिव्य व्यवस्था के लिए गौतम अपनी शिष्यमंडली के साथ सन्नद्ध हो गये। इन्द्र की सेवा में कोई कमी न रह जाय तथा अल्प समय में ही उनके निकट पहुँचा जा सके, इसको ध्यान में रखकर इन्द्र के आवास की कुटिया गौतम ने अपनी कुटिया के निकट ही बनवाया। अपेक्षाकृत बड़ी और विशिष्ट कुटिया को देवराज की प्रतिष्ठा के अनुकूल ही अलंकृत किया गया। जिन रास्तों से देवराज को सम्मेलन स्थल तक आना था उसे तोरणों से सजाकर भव्य रूप दिया गया। पथ पर पानी छिड़क कर धूल का शमन किया गया।

प्रवेश द्वार, जिसे हरे हरे बाँसों की बल्लियों और उनके फट्ठों से मेहरावनुमा बनाया गया था, उसे तोरण और विविध प्रकार के फूलों से सजाकर भव्य स्वरूप प्रदान किया गया। राजा जनक देवराज के स्वागत की तैयारियों में स्वयं लगे हुए थे। व्यवस्था में कोई भी चूक न केवल ज्ञान सम्मेलन बल्कि मिथिला राज्य की मर्यादा के विपरीत होगी।

सायंकाल गौतम ने राजा जनक से अब तक हो चुकी तैयारियों की समीक्षा के लिए अनुरोध किया ताकि तैयारियों की पूर्णता से महराज को आश्वस्ति मिल सके। शक्ति, प्रतिष्ठा एवं महिमा से देवगण के अपेक्षाकृत श्रेष्ठ होने के कारण महराज ने सहमति जताई और फिर गौतम मुनि के साथ समस्त आगत अतिथियों के आवास, भोजन एवं जलपान व्यवस्था का निरीक्षण किया। इसके पश्चात उद्घाटन स्थल, व्याख्यान कक्ष, अध्ययन कक्ष और अन्त में उस कुटी में पहुँचे जहाँ देवराज इन्द्र के ठहरने की व्यवस्था की गई थी। विशेष रूप से अलंकृत इस कुटी को देखकर महाराज ने प्रसन्नता व्यक्त की और गौतम मुनि की परिष्कृत रूचि की प्रशंसा की।

दूसरे दिन प्रातःकाल से ही देवराज के आने की प्रतीक्षा होने लगी। एक पहर दिन चढ़ आया था जब देवराज इन्द्र का विमान अन्य दो विमानों के साथ आश्रम की परिधि में पहुँचा। राजा जनक स्वयं प्रवेश द्वार पर अन्य ऋषि-मुनियों के साथ उपस्थित थे। प्रवेश द्वार पर पहुँचते ही अत्यन्त उल्लसित महाराज जनक ने आत्मीयता से देवराज का स्वागत किया। ऋषि-मुनियों के जय जयकार के बीच गौतम मुनि ने पत्नी अहिल्या के साथ पहुँचकर देवराज की

अगवानी की और विधिवत् पूजन एवं अर्चना की। तत्पश्चात् उनसे अपनी कुटिया में पधारने के लिए अनुरोध किया।

अधेड़ आयु का इन्द्र दिव्य वेशभूषा और नाना प्रकार के आभूषणों से अलंकृत, सिर पर मुकुट धारण किये देवताओं के राजा के अनुरूप भव्य और विशिष्ट दीख रहा था। वह महाराज जनक की आत्मीयता एवं ऋषि-मुनियों के भाव पूर्ण स्वागत से अभिभूत मन्द मन्द मुस्करा रहा था। अचानक उसकी दृष्टि अहिल्या पर पड़ी और वह उसकी अलौकिक एवं मोहक छवि को देखता रह गया। उसकी मुस्कराहट विलुप्त हो गई। हाव-भाव बदल गये और समस्त मर्यादाओं को भूलकर वह बार बार देवी अहिल्या को घूर रहा था। लोगों की दृष्टि से इन्द्र का यह अमर्यादित आचरण छिपा नहीं रहा। स्वयं महाराज की दृष्टि से भी इन्द्र का यह आचरण उसके पद और मर्यादा के अनुकूल नहीं था किन्तु वे अतिथि के प्रति मान्य मर्यादित आचरण के लिए प्रतिबद्ध थे और असहजता के बावजूद वह कुछ कहने में असमर्थ हो रहे थे।

इन्द्र ने अपने साथ आये सैनिकों, सेवकों एवं सेविकाओं को आश्रम से बाहर स्थापित शिविरों में रहने का निर्देश दिया, फिर महाराज जनक के साथ अपने लिए लगाये गये कुटिया में प्रवेश किया। विशेष रूप से अलंकृत एवं फूलों से सुवासित कुटिया इन्द्र को अपने पद एवं गरिमा के अनुकूल लगी। महाराज जनक शिष्टाचारवश इन्द्र के प्रति आने के लिए कृतज्ञता व्यक्त करने लगे। इन्द्र के स्थिर हो जाने के बाद, इन्द्र के प्रति श्रद्धा से अभिभूत अहिल्या ने पति गौतम के साथ विशिष्ट भोजन का थाल लिए कुटिया में प्रवेश कर इन्द्र के समक्ष प्रस्तुत किया एवं भोजन ग्रहण करने का आग्रह किया।

इन्द्र का ध्यान और चित्त अस्थिर हो गया। वह भूल गया कि मिथिला नरेश महाराज जनक उसके समक्ष बैठे हुए हैं तथा उनसे आश्रय प्राप्त आश्रम के कुलपति की अर्द्धांगिनी की मर्यादा के प्रतिकूल उसका आचरण हो रहा है। वह अहिल्या की तरफ दृष्टि घुमाते हुए बोला, 'देवी, आपका यौवन और यह रूप आश्रम नहीं बल्कि महलों के योग्य है। मैं सोच रहा हूँ, कि यहाँ से लौटने के बाद आपकी गरिमा के अनुकूल आपकी सुख सुविधा के निमित्त कुछ प्रयत्न करूँ। अभाव से ग्रस्त बनांचल में रहना आपके अनुपम सौन्दर्य के प्रतिकूल लग रहा है।'

क्रोध में जलते हुए गौतममुनि का मुखमण्डल लाल हो उठा, वहाँ उपस्थित अन्य मुनिगण उत्तेजित और असहज हो गये और स्वयं महाराज जनक अपने को अपमानित समझकर ग्लानि से भर उठे, किन्तु मुँह खोलने का साहस किसी के पास नहीं था। शक्ति, सामर्थ्य, धन, वैभव, पद एवं मर्यादा की दृष्टि से वह सब पर भारी पड़ा रहा था। उसके सैनिक थोड़ी दूरी पर ही उपस्थित थे तथा आवश्यकता पड़ने पर यहाँ से तुरन्त वहिर्गमन के लिए उसका वायुवान कुटिया के निकट ही सुलभ था।

अहिल्या सन्न रह गई। उसका प्रस्फुटित फूल की तरह उल्लसित मुखमण्डल सहसा मुरझा गया। मिथिला नरेश, पति गौतम तथा विशिष्ठ ऋषि-मुनियों के समक्ष इन्द्र द्वारा किये गये अपमान से आहत अहिल्या के संयम का बाँध आखिर टूट गया। 'देवराज इन्द्र, मेरे लिए व्यर्थ का कष्ट न करें। मैं अपने पति के साथ अत्यन्त आनन्द में हूँ। इस आश्रम के संन्यासी एवं अन्य लोग मुझे मातृवत जो आदर और सम्मान देते है उससे मैं अभिभूत हूँ। मुझे जो सुख-सुविधा और आत्मिक आनन्द प्राप्त है उसके समक्ष इस संसार का हर सुख और वैभव छोटा पड़ेगा देवराज।'

कथा सुनकर राम का मुखमण्डल उत्तेजित हो उठा था। बीच में ही बोल उठे, 'गुरुदेव, देवताओं के राजा इन्द्र जैसे पतित, अशिष्ट और चरित्रहीन व्यक्ति को इतनी गरिमा क्यों प्रदान की जाती है?'

'इसके अनेक कारण है पुत्र, आर्य संस्कृति और धर्म का मूल स्त्रोत देव जाति ही है। आर्य धर्म के मूल्यों को विकसित करना, आर्य धर्म की ग्राह्यता बढ़ाना, इसका प्रचार-प्रसार करना और इसके मूल्यों की रक्षा करना देव जाति का ही कार्य रहा है। धन, शक्ति और सामर्थ्य में वृद्धि के साथ इनको गौरव और गरिमा मिली; सम्मान और विशिष्टता, यश एवं कीर्ति मिली, किन्तु कालान्तर में धन और बल के कारण इनके अन्दर विलासिता ने जन्म लिया। इन्द्र देवताओं का राजा है, वह मदिरा पान करता है, उसके पास अनेक अप्सरायें हैं, अनेक दासियाँ इसकी सेवा में लगी रहती है, किन्तु स्वभाव से वह कामुक एवं विलासी है। जीवन की अच्छाइयाँ और बुराइयाँ तो ऊपर से ही प्रारम्भ होती हैं राम। अपने से ऊपर वाले को देखकर ही सामान्यजन अपना आचरण निर्धारित करता है। आज पूरी देवजाति विलासी प्रवृति की हो गई है, पथ-भ्रष्ट हो गई है और देव संस्कृति का

अनवरत क्षरण और पराभव हो रहा है। देवताओं की देखा-देखी मनुष्य जाति भी विलासिता की ओर बढ़ रही है।

आज भी देवराज इन्द्र के बल, वैभव और पराक्रम के सामने मनुष्य जाति का बड़ा से बड़ा राजा भी ठहर नहीं सकता। अतएव उसके विरोध का साहस कोई नहीं कर पाता और उसकी उदंडता लगातार बढ़ रही है, उसको रोकना असंभव होता जा रहा है।

'गुरुदेव, एक बात समझ में नहीं आती। आमजन के पास धन, बल, यश और लिप्सा के लिए मोह है और उसका भय लिप्सा के कारण हो सकता है किन्तु ऋषि, मुनि एवं तपस्वियों, जिन्होंने अपने को इन लोभों से विरक्त कर लिया है उन्हें किस प्रकार का भय होता है? राजा जनक एवं वहाँ उपस्थित सैकड़ों ऋषि-मुनियों के समक्ष देवि अहिल्या को इन्द्र ने अपमानित किया, उनकी प्रतिष्ठा के विपरीत आचरण किया किन्तु किसी ने भी इसका प्रतिवाद नहीं किया। सभी की आँखों के समक्ष एक स्त्री को एक बलिष्ठ, भ्रष्ठ और विलासी व्यक्ति के सामने अकेले छोड़ देना अनैतिकता की पराकाष्ठा है। इन्हें क्षमा नहीं किया जा सकता गुरुदेव।

'तुम्हारी सोच बिल्कुल सही है राम। मैं व्यक्तिगत रूप से इन सबके आचरण की निन्दा करता हूँ किन्तु एक बात तुम्हें समझ लेनी चाहिए। ऋषि-मुनि या तपस्वी भी मनुष्य ही हैं और इनके मन से भी लिप्सा पूरी तरह समाप्त नहीं हुई है। इनका जीवन भी मानवीय दुर्बलताओं से मुक्त नहीं हो सका है। वस्त्र, भोजन, आवास और सुरक्षा की चाह से मुक्त होना सामान्य बात नहीं है। यही कारण है पुत्र कि ऋषि-मुनि किसी न किसी आश्रम से सम्बद्ध हो जाते हैं और आश्रम सदैव राजाश्रय के लिए प्रयासरत रहते हैं। और जो सुख-सुविधा और रक्षा के लिए दूसरों पर निर्भर हो जाता है, उसकी अपनी सोच और व्यक्तिगत स्वतंत्रता बंधक बन जाती है।'

इन बुद्धिजीवियों को प्रसन्न रखना, इनका रख-रखाव करना एवं सुरक्षा प्रदान करना, इनके हितों की रक्षा करना, इनको समय समय पर पुरस्कृत करना राजाओं और सम्राटों को खूब भाता है वत्स राम। शासक और सुविधाभोगी बुद्धिजीवी वर्ग दोनों एक-दूसरे के पूरक होते हैं।

बुद्धिजीवी जनता के बीच रहते हैं। शासक की प्रशंसा, उसके यश

और कीर्ति का ढ़ोल पीटना, शासक के उत्पीड़न और दुर्बलताओं को ढ़ककर सामान्यजन की सोच से दूर रखना, इन बुद्धिजीवियों का मुख्य कार्य होता है। जो इस कार्य में जितना दक्ष होता है वह उतना ही पुरस्कृत होता है वत्स।

तुमने अनुभव किया होगा राम कि राजाओं का मंत्रिपरिषद जो सत्य, न्याय और प्रजा की सुख-सुविधा के लिए राजाओं को परामर्श देने के लिए बनाया जाता है, वह भी सुविधाभोगी हो गया है। वे राजा को उचित और न्यायपूर्ण रास्ता बताने में संकोच करते हैं और हमेशा भयभीत रहते हैं कि उनके परामर्श से राजा कहीं आहत या नाराज न हो जाय। अतएव वे वही बात कहते हैं जो राजा को प्रिय लगे। स्वाभाविक है पुत्र कि सामान्यजन और प्रजा को न्याय सुलभ नहीं हो पाता उन्हें उचित राजाश्रय प्राप्त नहीं हो पाता और सच पूछो तो इसीलिए अहंकार और अंधकार में रहने वाला राजा कुशल एवं लोकप्रिय शासक नहीं बन पाता।

एक बात और समझ लो राम कि जिसके पास धन और वैभव है, जो शक्तिशाली है, समाज उसी को पहचानता है, वही समाज को न्याय भी दे सकता है, सुशासन दे सकता है और वही किसी के अन्याय का प्रतिकार भी कर सकता है। शताब्दियाँ बीत जाती हैं ऐसे पुरुष को जन्म लेने में जो अन्याय, उत्पीड़न का प्रतिरोध कर सके, सामान्य जन को न्याय दे सके, समता का भाव जगा सके, नये सामाजिक मूल्यों को प्रतिष्ठापित कर सके और जिसके स्वयं का आचरण सामाजिक मूल्यों का धारक हो, मर्यादित हो। ऐसा ही व्यक्ति युग पुरुष बन जाता है, जिसे सामान्य जन अवतार कहता है राम। महर्षि ने अचानक चुप्पी साध ली। मुखमण्डल विषाद से भर गया जैसे वह गहरी सोच में पड़ गये हों।

राम महर्षि का मुखमण्डल देखते रह गये। कितनी व्यापक सोच है, जीवन का कितना अनुभव समेटे हैं गुरुदेव।

सहसा वातावरण कारूणिक और असहज बन गया। सभी मौन बन कर पथ पर आगे बढ़ रहे थे और कथा के अगले सूत्र की प्रतीक्षा कर रहे थे।

अधिक समय का मौन लक्ष्मण को स्वीकार नहीं था। बोल पड़े, 'गुरुदेव, आगे की कथा सुनाइए, मेरा मन अधीर हो रहा है। लोगों की कायरता मेरे मन को उत्तेजित कर रही है।

सहसा विश्वामित्र के मन को झटका लगा, बोले 'हाँ वत्स लक्ष्मण,

सुनाता हूँ।

'हाँ तो पुत्र लक्ष्मण, राजा जनक पर अपनी स्वयं की विवशता भारी पड़ रही थी, सम्भवतः वे आतिथेय के मान्य कर्त्तव्यों एवं परम्पराओं से बँधे थे। शक्तिशाली इन्द्र मिथिला प्रदेश का आमंत्रित अतिथि था। अन्ततः वे मौन ही वहाँ से हटकर अपनी कुटिया की ओर भारी मन से चल पड़े। शेष वहाँ उपस्थित ऋषिगण भी एक एक कर मौन ही हट गये।

गौतम और अहिल्या अधीर हो उठे। विवशता की पराकाष्ठा थी। जो हमारी रक्षा कर सकता था, संकट के समय जिससे अपने सम्मान की रक्षा की अपेक्षा थी, वहीं मौन धारण किए चला गया तो फिर अन्य किसी से भी सहायता की अपेक्षा करना व्यर्थ था। पीड़ित असहाय व्यक्ति की यह कैसी विवशता है। दोनों ही सोच रहे थे, 'देवराज मिथिला का आमंत्रित मुख्य अतिथि हैं, ज्ञानसभा में मिथिला एवं अन्य प्रदेशों से आमंत्रित ऋषि-मुनि पधारे हैं, अतएव आयोजित सभा के कार्यक्रमों में व्यतिक्रम उत्पन्न करना अत्यन्त अशोभनीय होगा। विवशता और अपमान का घूँट पीकर दोनों के पास कार्यक्रमों को निर्धारित प्रक्रिया से आगे बढ़ाने के अतिरिक्त कोई विकल्प नहीं था। आश्रम के निर्धारित कार्यक्रमों में अर्द्धांगिनी के साथ कुलपति का उपस्थित रहना ही मान्य परम्परा है।

विषाद की गहरी पीड़ा से त्रस्त भारी मन से ही दोनों आगे के कार्यक्रमों के लिए सन्नद्ध हो गये।

थोड़ी ही देर में समारोह का शुभारम्भ होने वाला था, अभ्यागत अतिथि भोजनोपरांत उद्घाटन कक्ष में उपस्थित हो गये थे। कक्ष की साज-सज्जा अवसर के अनुकूल थी। निर्धारित स्थानों पर अतिथिगण बैठकर मुख्य अतिथि इन्द्र तथा संरक्षक महाराज जनक के कक्ष में पहुँचने की प्रतीक्षा कर रहे थे। अधिक विलम्ब नहीं हुआ, महाराज जनक, देवराज इन्द्र को साथ लेकर सभाकक्ष में पहुँचे। परम्परा के अनुसार कुलपति गौतम अपनी अर्द्धांगिनी अहिल्या के साथ इन्द्र की आरती उतारने के लिए दीपों का थाल लेकर कक्ष के प्रवेश द्वार पर प्रतीक्षारत थे।

सभा-कक्ष में उपस्थित विद्वान मनीषियों से यह छिपा नहीं रहा कि इन्द्र की मनोदशा सामान्य नहीं थी और वह आरती उतार रही अहिल्या को अत्यन्त कामुक दृष्टि से एक टक निरख रहा था। इन्द्र, महाराज जनक के साथ

मंचस्थ हुआ और धर्मचर्चा के शुभारम्भ की घोषणा की। संक्षिप्त कार्यक्रम के बाद गौतम, अहिल्या एवं महाराज के साथ यज्ञ-कुण्ड में हवन के लिए इन्द्र भी उपस्थित हुआ किन्तु आश्चर्यजनक दृश्य था। इन्द्र निर्भय होकर देवी अहिल्या को बार-बार आपत्तिजनक दृष्टि से देख रहा था।

सभा-कक्ष में बैठे सभी मनीषी असहज हो उठे थे, इन्द्र के व्यवहार से क्षुब्ध और लज्जित हो रहे थे किन्तु इन्द्र इन सबसे बेपरवाह अहिल्या के अप्रतिम सौन्दर्य को आँखों से पी जाना चाहता था। पता नहीं अहिल्या फिर किसी अवसर पर उपस्थित हो या न हो, उससे पुनः भेंट हो या न हो, इसलिए उसे भरपूर नजरों से देख लेने का अवसर वह एक क्षण के लिए भी खोना नहीं चाहता था।

आहत अहिल्या के लिए एक एक पल भारी पड़ रहा था किन्तु वह पूरे कार्यक्रम में पलकें झुकाये यथासम्भव सहज बनकर भाग ले रही थी। वह इन्द्र की उपस्थिति से लापरवाह बनकर एक बार भी इन्द्र की तरफ अपनी दृष्टि नहीं उठाती थी। इन्द्र की विलासिता और उसके कलुष की कहानी थोड़ी बहुत सबने सुनी थी किन्तु वह इतना अभद्र और अशिष्ट होगा, किसी ने कल्पना भी नहीं की थी। थोड़ी देर में ही वह शेष कार्यक्रमों को छोड़कर सभा-कक्ष से उठकर अपनी कुटिया में पहुँच गया।

[2]

प्रवचन एवं यज्ञ ऐसे सम्मेलनों के अनिवार्य अंग होते हैं, किन्तु गोष्ठियाँ एवं सामयिक विषयों पर विचार विमर्श का भी उतना ही महत्व होता है। इन सभी अवसरों पर कुलपति का उपस्थित रहना, उनमें सहभागिता करना परम्परागत रूप से अनिवार्य होता है। अतएव गौतममुनि की व्यस्तता अत्यधिक बढ़ गई थी। स्वाभाविक रूप से अभ्यागत अतिथियों की देखभाल तथा व्यवस्था का सम्पूर्ण उत्तरदायित्व अहिल्या पर ही आ गया था।

देवराज की कुदृष्टि आहत अहिल्या का प्रतिक्षण पीछा कर रही थी। ईश्वर प्रदत्त उसका रूप, उसका मर्यादित आचरण ही आज अभिशाप बन गया था। आज तक की अर्जित उसकी प्रतिष्ठा, गौरव और स्वाभिमान, कुलपति की

धर्मपत्नी होने का सम्मान, उसका व्यक्तिगत ज्ञान, बुद्धि, विनम्रता और व्यवहार कुशलता सबकुछ दाव पर लग गया था। वह विचलित थी किन्तु सतर्क भी थी कि उसकी प्रतिक्रिया में इतना संयम बना रहे कि पति गौतम की प्रतिष्ठा पर आँच न आवे तथा सम्मेलन अपने उद्दश्यों को शान्तिपूर्वक पूरा करने में सफल रहे। अतएव दिन भर के सभी कार्यक्रमों में वह यथासम्भव सहज, संतुलित, विनम्र एवं महिमामयी बनी रही।

इस विचलित मनःस्थिति में भी वह बार बार अपने पुत्र के लिए व्यग्र हो उठती जिसे वह अपनी प्रिय सखी माया के पास दिन भर की देखभाल के लिए छोड़ आई थी। माया को देते समय कितना रो रहा था वह। उसकी छटपटाहट यादकर वह स्वयं व्याकुल होकर छटपटाने लगी।

दिन भर का कार्यक्रम पूरा हो चुका था। सूर्य की रश्मियाँ सिमट रही थीं। वह धीरे धीरे अपनी कुटिया की ओर बढ़ चली। माया उसके पुत्र शत को लेकर कुटिया के द्वार पर खड़ी प्रतीक्षारत थी। माँ को देखते ही पुत्र जोर जोर से रोने लगा। व्याकुल अहिल्या ने दौड़कर पुत्र को गोद में भर लिया। पुत्र शत माँ से ऐसे चिपक गया जैसे वह उसे फिर कभी नहीं छोड़ेगा। दिन भर रोते रोते पुत्र का बुरा हाल था। उसके गाल पर सूखे हुए आँसुओं की धार स्पष्ट दिख रही थी। माया ने बताया कि शत को सम्भालना बड़ा कठिन कार्य था। वह दिन भर माँ-माँ की रट लगाये था और दूध भी नहीं के बराबर ही पीया।

दिन भर पुत्र से बिछुड़ने की तड़प से अधीर अहिल्या का प्यार उमड़ पड़ा। वह पुत्र को कभी चूमती, कभी सहलाती और कभी कभी बालों में हाथ फेर रही थी। पुत्र की हालत देखकर सहसा उसकी आँखों में आँसू छलकने लगा। पुत्र को गोद में लिए ही उसने दीपक जलाया। छोटे से दीपक की लौ ने उसकी कुटिया के सम्पूर्ण अंधेरे को चीरकर जगमग कर दिया, किन्तु सूर्य का दिन भर का सम्पूर्ण प्रकाश भी उसके भीतर के तम को छू तक नहीं सका। कितनी विवश और असहाय है वह। उसके संतुष्ट वैवाहिक जीवन, निष्कलंक, बेदाग एवं गौरवपूर्ण चरित्र पर यह देवराज ग्रहण बनकर आ गया है। महाराज जनक, उसके स्वयं के पति एवं सैकड़ों अभ्यागत अतिथियों के समक्ष इन्द्र ने एक स्त्री का कितना मान-मर्दन किया, अपमानित किया और सभी तटस्थ एवं मूक दर्शक बने रहे। सम्भवतः इन्द्र के बल और वैभव ने सबका मुँह बन्द कर रखा है... और अपनी

विवशता पर सिसक उठी अहिल्या। अपमान का गरल पी जाने के अतिरिक्त उसके पास कोई विकल्प भी तो नहीं बचा था।

सहसा गुरुदेव की वाणी अवरूद्ध हो गई। आँखें छलछला आईं। कथा का क्रम टूट गया। राम भी द्रवित हो उठे किन्तु लक्ष्मण का मुँह क्रोध से तिलमिला उठा, 'गुरुदेव फिर लोग ऐसे गिरे और चरित्रहीन व्यक्तियों का प्रतिकार क्यों नहीं करते हैं?' 'लक्ष्मण ठीक कहा रहा है गुरुदेव, ऐसे चरित्रहीन व्यक्तियों को सम्मान देना तो उनके अपराधों को महिमामंडित करना है। गुरुदेव संयत होते हुए बोले, 'तुम लोगों की बातों से असहमत होने का प्रश्न ही नही है पुत्रों, किन्तु विरोध करने का साहस सबमें नहीं होता है। धन, बल, सत्ता और वैभव का विरोध ा तो कोई क्रान्तिकारी वीर या मौलिक चिन्तक ही कर सकता है। सामान्यजन तथा सामान्य ऋषि-मुनियों से ऐसे साहस की अपेक्षा की भी नहीं जा सकती।

'आगे क्या हुआ गुरुदेव' लक्ष्मण ने कथा को आगे बढ़ाने के लिए गुरुदेव को प्रेरित किया।

हाँ पुत्र, कहता हूँ। अन्धकार गहन हो चुका था जब गौतम ने दिन भर के कार्यों को निबटाकर अपनी कुटिया में प्रवेश किया। पुत्र शत पिता को देखते ही उनकी गोद में जाने के लिए लपक पड़ा। गौतम ने पुत्र को उठाकर सीने से लगा लिया।

अपनी दुर्बलता और असहाय स्थिति से क्षुब्ध गौतम आत्मग्लानि से भर उठे थे। वह पत्नी अहिल्या को धीरज बँधाने की स्थिति में नहीं थे। उनका मुखमण्डल मलिन एवं कान्तिहीन हो चुका था। वह इन्द्र से इस अपमान का प्रतिशोध कैसे लें, उनकी समझ में नहीं आ रहा था।

अहिल्या के आँसू असहाय पति को देखकर सूख चुके थे। वह यथाशक्ति सहज बनकर भोजन बनाने के कार्य में जुट गई। परस्पर संवाद की डोर टूट चुकी थी।

थके माँदे गौतम भोजन के बाद शय्या पर लेटते ही गहरी नींद में सो गये। डरा, सहमा शत बड़ी देर तक माँ से चिपका रहा। उसे यह भय सता रहा था कि माँ उसे छोड़कर फिर कहीं चली न जाय। धीरे-धीरे माँ की थपकी से उसे नीद आ गई। रात के तीसरे पहर थकी माँदी अहिल्या भी गहरी नींद में समा गई।

[3]

अपनी कुटिया में लौटकर इन्द्र का मन बेचैन हो उठा। नारी सौन्दर्य का यह रूप तो उसने अभी तक कहीं नहीं देखा है। उसके महल की अप्सरायें और पूरे देवलोक की कन्यायें इसके सामने कहीं नहीं ठहरतीं। कैसी विडम्बना है कि ऐसी सुन्दरी को जिसे धन, वैभव से पूर्ण किसी महल में रहना चाहिए, वह एक भिखमंगे संन्यासी के साथ बन में रह रही है। यह तो विधि द्वारा रचित सौन्दर्य का घोर अपमान है।

उसके ऊपर मैंने अपने वैभव का जाल फेंका था किन्तु उसने उसे तृणवत समझ, मेरी तरफ अपनी आँख भी नहीं उठाई। उसकी बातों में कितना दम्भ और अभिमान भरा था। दूसरों के दिये टुकड़ों पर आश्रित और दूसरों की दया पर निर्भर रहने वाले गौतम के साथ रहकर वह अपने को परम संतुष्ट बता रही है। इन्द्र के साथ ऐसा तो कभी नहीं हुआ। देव और पृथ्वी लोक की तरुणियाँ तो इन्द्र की कृपा के लिए लालायित रहती हैं, उसकी कृपा दृष्टि के लिए तरसती हैं, किन्तु यह तो सबसे अलग है। यह देवराज इन्द्र का अपमान है। अब तो उसे प्राप्त किये बिना देवलोक लौट जाना अपने पौरुष और वैभव को पराजित करना है। उसकी इन्द्रियाँ सजग हो गईं, उसके रक्त में उबाल आ गया। मस्तिष्क कुछ करने के लिए कौंधने लगा। उसे कुछ न कुछ करना ही पड़ेगा, वह आनन्द से वंचित होकर नहीं लौटेगा।

वह अशांत हो उठा और फिर मदिरा पात्र की ओर लपका। 'अच्छा हुआ वह मदिरा का बड़ा पात्र भर कर लाया है अन्यथा इन आश्रमों में तो दूध के अतिरिक्त कुछ मिलता ही नहीं। मदिरा पान के बिना तो वह रह ही नहीं सकता।'

मदिरा का अभ्यस्त इन्द्र मदिरा पीकर सहज होने लगा। धीरे-धीरे वह योजना बनाने की धुन में खो गया। यदि उसने अहिल्या को अपनी शक्ति से उसकी इच्छा के विपरीत प्राप्त करने का प्रयत्न किया तो उसके समक्ष प्रतिरोधक शक्तियाँ कौन कौन सी हो सकती हैं?

उसके मस्तिष्क में ऋषि मंडली का यहाँ होना ही सबसे बड़ी अवरोधक शक्ति होने का भान हुआ। सैकड़ों की संख्या में जुटे संन्यासी हो-हल्ला या

निन्दा कर सकते हैं। इसके अतिरिक्त इनको कुछ करने का सामर्थ्य ही नहीं है। राज्य कृपा के लिए तरसते और उसके इशारों पर नाचने वाले संन्यासी उससे भिड़ने का साहस नहीं जुटा सकते। इनके पास एक ही ब्रह्मास्त्र है - 'शापित करने का'। किन्तु शाप को कार्यान्वित कराने का काम तो राजतंत्र का ही है। यदि राजतंत्र इनके शाप को अनसुना कर दे तो इनका शाप मेरा क्या बिगाड़ सकता है?

उसके लिए दूसरी बड़ी अवरोधक शक्ति मिथिला नरेश महाराज जनक हो सकते हैं किन्तु जनक एक अत्यन्त शालीन, विद्वान और भद्र राजा हैं। उनके कोश में युद्ध नहीं है। इसके अतिरिक्त राजा आतिथेय के कर्त्तव्यों से बँधे हुए हैं। मैं उनका आमंत्रित अतिथि हूँ। वे मुझसे उलझने की सोच भी नहीं सकते हैं। फिर भी यदि गौतम और ऋषियों के दबाव में वे मुझसे उलझते हैं तो मेरे पास निकट ही इतना सौन्यबल है कि मैं उन्हें आसानी से पराजित कर सकता हूँ। इसके पश्चात भी यदि कोई आसन्न संकट उत्पन्न होगा तो मेरे पास भाग जाने के लिए अपना विमान अपनी कुटिया के पास ही है।

लोक निन्दा भी मेरे लिए शायद अवरोधक शक्ति बन सकती है किन्तु पृथ्वी लोक के आमजन के मन में देवताओं के प्रति अपार श्रद्धा और विश्वास है और उनकी वाणी पर आमजन अविश्वास नहीं कर सकता। और फिर मैं तो देवताओं का राजा हूँ। अन्यथा की स्थिति में यदि मैं सम्पूर्ण अपराध का दोष अहिल्या पर ही मढ़ दूँगा तो आमजन मेरे ऊपर अविश्वास नहीं कर सकता। कम से कम आमजन में मतभेद तो पैदा हो ही जायेगा।

अपनी सोच और समझ से इन्द्र ने अपने को आश्वस्ति के भाव से भर लिया।

आश्वस्ति की अनुभूति से वह अपनी योजना में आगे बढ़ने के लिए प्रेरित हुआ। मदिरा पान ही उसकी शक्ति है। पात्र खाली हो रहा था, भर रहा था और उसकी उत्तेजना प्रदीप्त, और अधिक प्रदीप्त होती जा रही थी। त्रैलोक्य सुन्दरी की छवि वह पल भर भी विस्मृत नहीं कर पा रहा था। उसके अनेक रूपों, मुद्राओं और छवियों की कल्पना से इन्द्र का रक्त उष्ण और मन आतुर हो उठा था। उसे मुझे स्वीकार करना ही पड़ेगा, चाहे सहज बनकर या असहज होकर। इन्द्र को आज तक कहीं निराश नहीं होना पड़ा है।

उसकी इच्छायें जहाँ बेकाबू होती जा रही थीं, उसका विवेक उसे बार बार झकझोर रहा था। क्या कर रहे हो इन्द्र? तुम न केवल अपनी बल्कि पूरे देवलोक की प्रतिष्ठा, मान, मर्यादा और उसके आदर्शों को क्षणिक सुख के लिए धूल में मिलाने के लिए प्रतिबद्ध हो, धिक्कार है तुम्हें इन्द्र। युगों तक श्रम एवं तपस्या से अर्जित देवताओं के यश एवं कीर्ति को कितनी निर्दयता से बलि चढ़ाने के लिए उद्यत हो इन्द्र। आचरण, सद्विचार एवं सद्चरित्र ही आर्यधर्म की पूँजी है, इनको लुटाकर आर्यों को क्यों कंगाल करने पर तुले हो इन्द्र?

अहिल्या ऋषि-पत्नी है। वह संतुष्ट पत्नी और ममतामयी माँ है। कितनी उदात्त भावना और श्रद्धाभाव से तुम्हारी पूजा और अभ्यर्थना कर रही थी किन्तु तुम उसकी श्रद्धा का मूल्य अत्यन्त कुत्सित और घृणित मनोभावों से तौल रहे हो। धिक्कार है इन्द्र। तुमने जिस धन, वैभव और बल के आकर्षण का जाल उस पर फेंका था, उसे उसने आँख उठाकर भी नहीं देखा। किसी निर्धन ऋषि की पत्नी बनकर एक साधारण कुटिया में रहना उसे अधिक प्रिय है। उसकी अपनी सचरित्रता, सद्विचार और ऋषि पत्नी होने का गौरव तुम्हारे धन, वैभव और महल पर भारी पड़ रहा है इन्द्र।

तुम देवताओं के राजा के रूप में आमंत्रित मुख्य अतिथि हो, तुम्हारा आचरण, व्यवहार, धर्म और मर्यादा अपने पद के अनुरूप होना चाहिए इन्द्र किन्तु तुम तो सबकुछ भूलकर अपने धन एवं बल के मद में एक सच्चरित्र, विवाहित नारी को कलंकित करने के लिए उद्यत हो। जिसे कलंकित करने की कल्पना कर रहे हो, तुम उससे भी अधिक कलंकित हो जाओगे इन्द्र। एक निर्बल, असहाय नारी पर तुम्हारे किये गये अत्याचार को मानव-इतिहास कभी क्षमा नहीं करेगा। पीड़िता के आँसू और करुण क्रन्दन की आँच में जल जाओगे इन्द्र। अभी समय है, कदम रोक लो, अतिथि के गौरव को कलंकित मत करो इन्द्र।

अचानक सोच की लय टूट गई। इन्द्र ने खाली पात्र को मदिरा से भरा और उसके भीतर उमंग की नई लहर ने फिर जन्म ले लिया।

विवेक का प्रकाश धुँधलाने लगा। मस्तिष्क का विद्रोह पराजित हो गया। काम की आग और वासना की लपटों में वह फिर जलने लगा किन्तु मदिरा की अधिकता उसे शिथिल करने लगी। आधी रात बीतते बीतते उसे नींद आ गई।

रात के तीसरे पहर उसकी नीद खुल गई। वह सचेत हो गया।

गौतम भोर की बेला में गंगा स्नान करने जाता है। उस समय अहिल्या अकेली रह जायेगी। उसके पास पहुँचने का इससे अच्छा अवसर फिर नहीं मिलेगा। असहाय और असुरक्षित अहिल्या को काबू करना उसके लिए बहुत आसान रहेगा।

उसने उठकर पात्र में मदिरा ढाली; पीकर नई स्फूर्ति आ गई। शिराओं में उष्ण रक्त उबलने लगा। वह अहिल्या की कुटिया में जाने के लिए अधीर हो उठा, विलम्ब उसे असह्य होता जा रहा था। यह तो बहुत अच्छा है कि गौतम ने अपनी कुटिया के पास ही मेरी कुटिया बनाई है। जाने में विलम्ब नहीं होगा।

हर आहट पर वह सजग हो जाता था किन्तु उसकी आँखे तो गौतम की कुटिया पर लगी थी।

अचानक गौतम की कुटिया से ध्वनि का संकेत मिला। गौतम ही होगा, उसके जाने का समय हो गया है। वह सतर्क होकर खड़ा हो गया।

इन्द्र का अनुमान सही था। गौतम ने कुटिया का पट खोला फिर बाहर निकल कर अत्यन्त धीरे से बिना ध्वनि के पट को लगा दिया। शायद अहिल्या गहरी नींद में है, गौतम उसकी नींद में खलल नहीं डालना चाहता।

इन्द्र इसी अवसर की प्रतीक्षा में तड़प रहा था। गौतम के आँखों से ओझल होते ही वह तेजी से अहिल्या की कुटी की ओर लपका। फिर बिना ध्वनि किये उसने पट खोला। भीतर घोर निस्तब्धता थी। उसने धीरे से पट बन्द कर दिया। अंधेरे के कारण कुछ दिख नहीं रहा था। आँखें थोड़ी अभ्यस्त हुईं तो सब कुछ दिखने लगा। अहिल्या अपनी गोदी में चिपकाए पुत्र के साथ गहरी नींद में सोयी थी। कुछ क्षण खड़ा होकर वह अहिल्या के अप्रतिम सौन्दर्य को निहारता रहा, जैसे पूरे सौन्दर्य को पी जाने को लालायित हो। सहसा उसे समय की सीमा का बोध हुआ।

इन्द्र ने झुककर अहिल्या के ललाट का गहरा चुम्बन किया। अहिल्या कसमसाई, उसे कुछ आभास हुआ किन्तु गहरी नींद के बोझ से वह फिर दब गई। सामान्यतया पत्नी अपने पति के हाव भाव और क्रियाकलापों की अभ्यस्त होती है। उसे पहचानने में भूल नहीं करती है। उसे आभास हुआ कि अभिसार की यह प्रक्रिया सर्वथा भिन्न है। छूअन में अधिक गहराई और आक्रमकता है। गौतम के हाथों की कोमलता से अलग है और फिर ब्रह्मवेला में गौतम ने कभी काम-क्रीड़ा

का प्रयास नहीं किया। उसका सोया मस्तिष्क जाग उठा। उसने आँखे खोल दी। क्षीण पड़ते अन्धकार में उसने देखा कि विकृत मनोभावों से ग्रस्त कामातुर इन्द्र उस पर झुका हुआ है। सहसा उसके मुँह से भयानक चीत्कार उठी। चारों दिशायें हिल उठीं। वह संघर्ष करते इन्द्र के पाश से बाहर निकलने के लिए छटपटाने लगी।

अनवरत चीत्कार, हो-हल्ला और कारुणिक क्रन्दन से आसपास में रहने वाले संन्यासी गौतम की कुटिया की ओर दौड़े। द्वार के पास पहुँचे लोगों को आभास हुआ जैसे भीतर कोई संघर्ष चल रहा है। गौतम मुनि के भीतर होने का तो कोई प्रश्न ही नहीं, तो फिर यह संघर्ष किससे हो रहा है? लोग आशंकित हो उठे। पट खोलने के अतिरिक्त कोई विकल्प नहीं था।

और जब लोगों ने कुटिया का पट खोलने का प्रयास किया तो वह भीतर से बन्द था।

इन्द्र को द्वार के बाहर जनसमूह होने का आभास हो चला था। भीतर अब और ठहरना उसके लिए घातक हो सकता है और फिर लोग पट को तोड़कर भीतर भी तो आ सकते हैं। वह तेजी से द्वार तक पहुँचा और पट खोल दिया।

और फिर इन्द्र को अस्त व्यस्त, सहमा बाहर निकलते देखकर लोग भौंचक होकर रह गये।

उसके जगह जगह फटे वस्त्र, मुँह और हाथ पर लगे खरोचों से टपकता खून, दाँत से जगह-जगह अंगों पर पड़े गहरे घावों के चिन्ह, भीतर घटी घटनाओं के साक्षी थे। पीड़िता के साथ हुई अप्रत्याशित घटना का अनुमान लगाना लोगों के लिए कठिन नहीं था।

गौतम गंगा स्नान कर घर की तरफ लौटे। आश्रम के भीतर लोगों को इधर-उधर भागते हुए देखा। वे किसी अप्रत्याशित घटना की आशंका से सिहर उठे। उनके कदमों की गति बढ़ गई। वे तेजी से अपनी कुटिया की ओर दौड़ने लगे। अपनी ही कुटिया के द्वार पर खड़े लोगों को देखकर गौतम सन्न रह गये। किसी अप्रिय घटना की कल्पना से मन भयभीत होने लगा। और तभी इन्द्र को अस्त-व्यस्त अपनी कुटिया से बाहर निकलते देखा।

कुटिया से बाहर जाते इन्द्र ने ऊँची आवाज में अपनी कुटिल चालों

का वाण छोड़ दिया, 'आमंत्रित करके भीतर बुलाया और अब लोगों को देखकर अपना प्रतिरोध जता रही है।'

इन्द्र तेजी से अपनी कुटिया की ओर लपका। लोगों की बढ़ती भीड़ से वह भयभीत होने लगा। वहाँ से भाग जाना ही उसे श्रेयस्कर लगा। वह सीधे अपने विमान में बैठकर आकाश मार्ग से आश्रम के बाहर निकल गया।

गौतम कुटिया के भीतर पहुँचे। भयभीत विलाप करता शत दौड़कर पिता की बाहों में सिमट गया। गोदी में पुत्र को चिपकाए गौतम की दृष्टि अस्त-व्यस्त करुण क्रन्दन करती अहिल्या की ओर गयी। अहिल्या खड़ी हुई, फिर रुधे कण्ठों से बोली, 'मैं निर्दोष हूँ स्वामी। मेरा कहीं से भी कोई दोष नहीं है।'

गौतम सहसा सोच में पड़ गये। 'लगभग एक दशक के वैवाहिक जीवन में अहिल्या उसके प्रति निष्ठावान और प्रसन्न रही है। उसकी आँखों में मैंने कभी दूसरों के प्रति आकर्षण नहीं देखा। गौतम को इन्द्र की कुटिलता याद आई। कैसे वह अहिल्या को देखकर असहज हो गया था। महाराज जनक के समक्ष ही उसने अहिल्या की ओर अपने धन, बल और वैभव का जाल फेंका था और अहिल्या ने रोषपूर्वक उसे तिरस्कृत कर दिया। अहिल्या की वाणी, व्यवहार और आचरण में इन्द्र के प्रति कभी आकर्षण नहीं दिखा। मन में विश्वास जगा, अहिल्या निर्दोष है और उसके साथ इन्द्र ने छल किया है।'

सहसा गौतम की चेतना जग उठी। वह शत को गोदी में चिपकाए ही अहिल्या की ओर बढ़े। फिर अहिल्या को भींचते हुए बोल उठे, 'मैं जानता हूँ प्रिये, तुम निर्दोष हो।'

सहसा दोनों को छोड़कर क्रोध में उबलते गौतम कुटिया से बाहर निकले, वे चिल्लाकर बताना चाहते थे कि उनकी पत्नी अहिल्या निर्दोष है। आश्चर्य था, लोग बिना प्रतिक्रिया जताए वहाँ से जा चुके थे। शायद इन्द्र के वाक्य ने सबका विश्वास जीत लिया था। बरसों से आश्रम में रहने वाली अहिल्या पर लोगों के विश्वास को इन्द्र के एक झूठ ने पराजित कर दिया था। गौतम की आँखों के सामने अन्धेरा छा गया। वह निर्दोष अहिल्या को कलंकित करने वाले अपराधी देवराज इन्द्र को दण्डित करने के लिए प्रतिज्ञावद्ध होने लगे।

कथा कहते कहते महर्षि अचानक चुप हो गये। उनकी दृष्टि सहसा राम की ओर उठी। राम की मुट्ठिया तनी हुई थी, आँखे क्रोध से लाल हो रही थीं।

मुखमण्डल क्रोध के आवेश में तमतमा रहा था।

'गरुदेव! दुष्ट और लम्पट इन्द्र चला गया और वहाँ उपस्थित जनसमुदाय प्रतिकार का साहस नहीं जुटा पाया, मुझे आश्चर्य और क्षोभ हो रहा है। मैं जानने को उत्सुक हूँ गुरुदेव कि वहाँ धर्म सम्मेलन में भाग लेने वाले ऋषियों, मनीषियों और समाज के समर्थ लोगों की, देवी अहिल्या के प्रति क्या प्रतिक्रिया थी? क्या समाज ने इन्द्र को उसके किये गये कर्मों के लिए दण्डित किया?' कथा को आगे बढ़ाइये गुरुदेव।

गुरुदेव के मुख मण्डल पर घनी पीड़ा उभर आई। विषाद की काली छाया घनीभूत हो गई। राम को अनुभव हुआ, सम्भवतः महर्षि अहिल्या की पीड़ा को ढ़ो रहे हैं। देवी अहिल्या को न्याय नहीं मिल सका।

'कथा को कहता हूँ पुत्र। इस निर्मम और कायर समाज की कथा कहकर ही, शायद मेरे मन को थोड़ी शान्ति मिल जाय।'

'हाँ तो सौमित्र राम, गौतम अपनी कुटिया में वापस आकर बैठ गये। मन में क्षण भर निराशा का भाव आया, इन्द्र के पास बल और वैभव है, वह देवताओं का राजा है, उसकी कृपा दृष्टि के लिए देव, दानव, मनुष्य, सम्राट और बड़े बड़े ऋर्षि महर्षि लालायित रहते हैं। भला उनके अनुरोध पर क्या कोई इन्द्र से प्रतिकार का साहस कर सकता है?

आर्यावर्त के सम्राटों में मतभेद है, वे कभी एकमत नहीं होते और यदि एकमत हो भी जाँय तो क्या इस अन्याय के प्रतिकार के लिए इन्द्र को दण्डित करने का साहस कर सकते हैं? महाराज जनक का उनके प्रति स्नेह सन्देह से परे है किन्तु क्या वे स्वयं देवराज को उसके अधर्मों के लिए दण्डित करने की सोच सकते हैं? सम्भवतः नहीं। किंचित अपनी विवशता पर तरस आ रहा था गौतम को।

गौतम ने पत्नी अहिल्या की ओर देखा। दया और करुणा से भर उठा उनका मन। कैसे ढ़ाढस बँधाऊँ, कैसे उसकी निर्दोषिता प्रमाणित करूँ, कैसे उसका सम्मान लौटा दूँ। निर्धनता और निर्बलता का अभिशाप उसे क्या न्याय से वंचित करेगा? और तभी उनके मन में आया, कम से कम धर्मसभा में ऋषि-मुनि तो उनकी बात सुनकर इन्द्र के पापों पर विचार कर उसे दण्डित करने का कोई न कोई उपाय तो करेंगे ही। मन में थोड़ा साहस का संचार हुआ और गौतम,

पत्नी का हाथ पकड़ कर न्याय की प्रत्याशा में धर्मसभा के लिए चल पड़े।

धर्म-सभा तपस्वियों और ऋषि-मुनियों से भरी हुई थी। गौतम पुत्र और पत्नी के साथ धर्म सभा में पहुँच गये। किन्तु वहाँ सभी निर्विकार तटस्थ भाव से बैठे हुए थे। सभी की दृष्टि अहिल्या पर केन्द्रित हो गई। अहिल्या सिर झुकाये सबके समक्ष बैठ गई। गौतम सभा को सम्बोधित करने के लिए उठे।

उपस्थित सम्मानित तपस्वीगण,

आप सबको अब तक ज्ञात हो चुका है कि देवराज इन्द्र ने आज ब्रह्मवेला में मेरी कुटिया में प्रवेश कर मेरी पत्नी अहिल्या का बलपूर्वक शील भंग किया है। एक अतिथि ने अपने धर्म और नैतिक मूल्यों को तिलांजलि देकर आतिथेय के साथ घोर अन्याय किया है। यह अन्याय न केवल अहिल्या और मेरे साथ हुआ है बल्कि पूरे ऋषि समाज और आश्रमों में रहने वाले ऋषि-मुनियों के साथ हुआ है। पूरे नारी समाज का अपमान है यह ऋषिगण। यदि समय रहते इसका प्रतिकार नहीं किया गया तो पूरा ऋषि समाज अपना सम्मान खो देगा। ऋषि-मुनियों और पूरे आर्यधर्म पर समाज का विश्वास उठ जायेगा। यह गौतम आप सबसे अनुरोध करता है कि ऋषि समाज प्रतिकार स्वरूप इन्द्र को देवराज के पद से वंचित कर उसे पूजा के अयोग्य घोषित करें।

गौतम ने अपनी बात कहकर ऋषि समाज पर दृष्टि डाली। गौतम ने देखा सभा आधी खाली हो चुकी है। ऐसा प्रत्येक समाज में होता है। अधिकांश लोग भयवश निर्विकार और तटस्थ बने रहते हैं। वे प्रतिक्रिया देने से बचते हैं। उन्हें तमाशा देखना ही सर्वाधिक प्रिय आनन्द है। उन्हें न्याय और अन्याय के पचड़े से कुछ लेना देना नहीं होता...।

...जाते-जाते इन्द्र ने जो एक वाक्य बोला था, उसने भी लोगों को तटस्थ रहने और तर्क करने का सम्बल दे दिया। हो सकता है इन्द्र ने सही ही कहा हो। इसे झूठा सिद्ध करने के लिए उनके पास क्या उपाय है। हो सकता है अहिल्या ने इन्द्र को आमंत्रित ही किया हो और बाद में प्रकट हो जाने के भय से उसने हल्ला मचाया हो। चाहे जो सत्य हो विश्वासपूर्वक नहीं कहा जा सकता, किन्तु यह सत्य तो निर्विवाद है कि अहिल्या का शील भंग हो चुका है, वह पतित हो चुकी है और किसी मुनि की पत्नी होने की उसकी योग्यता समाप्त हो चुकी है। किन्तु कुछ संत अभी भी वहाँ बैठे थे जो अनुभव कर रहे थे कि देवी अहिल्या

को इन्द्र ने पीड़ित, अपमानित और प्रवंचित किया है। एक पतिव्रता, विदुषी अबला के साथ इन्द्र ने अपने वैभव और बल के दम्भ में, बलात्कार किया है। वे अहिल्या की पीड़ा और आहत भावनाओं से अत्यन्त संवेदित और द्रवित हो उठे थे किन्तु उनके साथ कितनी विवशता थी वे किसके बल और साहस पर इन्द्र से प्रतिशोध की कल्पना करते?

...जो सम्राट उसकी कृपा के लिए लालायित रहते हैं, वे भला उससे युद्ध करेंगे, ऐसा सोचना भी व्यर्थ हैं। अहिल्या ही नहीं पूरी स्त्री जाति उनके लिए भोग्या है। तब फिर अहिल्या के सम्मान की रक्षा के लिए युद्ध की बात सोचना भी इन राजाओं के लिए बेमानी है...।

...और फिर युद्ध करके ही कोई इन्द्र का क्या बिगाड़ सकता है। इन्द्र की शक्ति और सामर्थ्य के सामने सभी असहाय और बौने हैं।

विवशता की पीड़ा में जल रहे ऋषिगण संज्ञा शून्य और जड़ हो गये थे। धीरे धीरे कक्ष का ऋषिगण से रिक्त हो जाना स्वाभाविक था।

जो ऋषि, मुनि, तपस्वी, चिन्तक, विचारक और दार्शनिक गौतम के ज्ञान, गरिमा और आतिथ्य से कल तक अभिभूत थे, वे सभी सहानुभूति के दो शब्द कहे बिना ही एक एक कर चले गये थे। अपमान से आहत गौतम कभी आवेश में मुट्ठी बाँधते, प्रतिशोध के लिए तन जाते और कभी अपनी दीनता पर स्वयं लज्जित हो उठते।

और, अपमान की आग में झुलस रही अहिल्या के पास कलंकित जीवन ढ़ोने के अतिरिक्त बचा ही क्या था? जीवन ढ़ोने के लिए उसके पास बस एक ही पूँजी बची थी - पति का विश्वास और पुत्र का सहारा।

गौतम की प्रज्ञा लौटी। पुत्र को गोद में चिपकाया फिर अहिल्या का हाथ थामें लौट चले अपनी कुटिया की ओर।

[4]

मिथिला प्रदेश ज्ञान की धरती है। इसके ज्ञान का आलोक चारों दिशाओं में जाता है। गौतम का आश्रम 'ज्ञान का पीठ' और गौतम 'मिथिला के ज्ञान' के प्रतीक मुनि रहे हैं। किन्तु समय का प्रवाह एक समान नहीं रहता है।

उतार, चढ़ाव प्रकृति का नियम है, विधि की योजना है।

गौतम की तपोभूमि अपनी चमक, अपनी पवित्रता और अपना महत्व खो चुकी है। इन्द्र की कुटिलता से यह भूमि कलंकित हो चुकी है। ऋषि, मुनि और तपस्वियों की साधना के लिए यह स्थान वर्जित हो चुका है। पुनर्जीवन के लिए दूसरे स्थान पर नये आश्रम का निर्माण सामान्य जन से लेकर तपस्वियों तक की आकांक्षा बन चुकी है।

X X X X

अहिल्या अपनी सोच से उबर नहीं पा रही है, उसकी अन्तर्रात्मा मर चुकी है। अब और जीने का आकर्षण समाप्त हो चुका है। जिस शरीर का नीच, अपराधी इन्द्र ने भोग किया है उस शरीर को ढ़ोने का कोई अर्थ नहीं बचा है। जिस प्रतिष्ठा और सम्मान को वह जी चुकी है वह फिर कभी उसके जीवन में नहीं लौटेगा। गौतम मुनि की पत्नी होने की मर्यादा उसके जीवन में कभी नहीं लौटेगी। समाज में लोगों को अहिल्या नहीं, उसका कलंक ही दिखेगा। बड़ा होकर क्या सोचेगा शत, वह इन्द्र की भोग्या माँ का पुत्र है। समाज उसे अहिल्या का नहीं बल्कि कलंकिनी माँ का बेटा कहेगा। इस कलंकित जीवन से तो मर जाना ही श्रेयस्कर है। विषाद की घनीभूत धुंध से आवृत अपनी सोच से वह बाहर नहीं निकल पा रही है। पंखविहीन पक्षी की तरह पल पल तड़पना ही उसका भाग्य बन चुका है।

शय्या पर निढ़ाल पड़ी अहिल्या को सहसा कुटिया के बाहर से पद चाप की ध्वनि आई। गौतम ही थे जो बाहर घूमने गये थे।

भीतर पत्नी का विषादग्रस्त मुरझाया रूप देखकर गौतम द्रवित हो उठे। पत्नी के सिर पर स्नेहपूर्वक हाथ रख दिया 'प्रिये! तुम उदास क्यों हो रही हो, तुम्हारा लेश-मात्र भी दोष नहीं है'।

पति का स्नेह पाकर अहिल्या के धैर्य का बाँध टूट गया। फूट-फूटकर रोती अहिल्या, गौतम के वक्ष से चिपक गई।

'स्वामी! अब मैं जीने का अधिकार खो चुकी हूँ। मेरी यह काया अपवित्र हो चुकी है, अब यह आपकी अर्द्धांगिनी बनने के योग्य नहीं रही। इस जीवन को समाप्त कर अगले जन्म में पुनः आपकी अर्द्धांगिनी बनने का गौरव मुझे

मिले, यही कामना शेष बची है।'

अहिल्या की सिसकियाँ रोके नहीं रूक रही थी। कंठ अवरूद्ध हो चला था।

'नहीं अहिल्या' गौतम बोले 'तुम मेरी अर्द्धांगिनी रही हो, अब भी वही हो और सदैव मेरी प्रिय अर्द्धांगिनी रहोगी प्रिये। यह गौतम अपने पूरे विवेक के साथ कह रहा है, तुम निष्पाप और निष्कलंक हो। तुम पवित्र हो, तुम किसी प्रकार भी कलुषित नहीं हुई हो अहिल्ये। कलंकित तो वह इन्द्र हुआ है। किसी असहाय, अबला के साथ उसकी इच्छा के विरूद्ध बलात्कार करना मर्यादा के विरूद्ध आचरण और सर्वथा पाप है। और सच पूछो तो प्रिये! लज्जित तो मैं हूँ। मेरे पास वह सामर्थ्य नहीं है कि मैं इन्द्र से तुम्हारे साथ किये गये अपराध का प्रतिशोध ले सकूँ।'

कुटिया से बाहर निकलते हुए द्वार पर खड़े लोगों के समक्ष भ्रम फैलाने के लिए उसने जो कुछ कहा, वह उसकी उदंडता और निर्लज्जता है, अतिथि एवं आतिथेय के बीच मान्य मर्यादित आचरण के सर्वथा विपरीत और कलंकित करने वाला है। आत्महत्या तो निर्लज्ज इन्द्र को करनी चाहिए किन्तु वह स्वयं कभी नहीं मरेगा और उसे मारने वाला सम्पूर्ण पृथ्वी पर कोई नहीं दिखता मुझे। अपनी स्वयं की विवशता पर मुझे मर्मान्तक पीड़ा हो रही है अहिल्ये, मुझे क्षमा करना।'

पति के स्नेह और विश्वास से अहिल्या को किंचित आश्वस्ति मिली। कम से कम पति के विश्वास की पूँजी तो उसके पास है। जो पति उसकी मर्यादा की रक्षा के लिए उसकी ही तरह मर्मान्तक पीड़ा झेल रहा है, इन्द्र से प्रतिशोध के लिए तड़प रहा है उसे और पीड़ा देना उसके प्रति अन्याय होगा।

'अहिल्या अपने आँसुओं के प्रवाह को यथाशक्ति कम करने का प्रयास करती रही। उसे बोध हुआ कि आत्महत्या के विचारों से मुक्त होकर ही भविष्य की कल्पना की जा सकती है। अब तो उसे लांछित चरित्र के साथ ही जीना पड़ेगा किन्तु उसके समर्पित पति और निर्दोष अबोध पुत्र का भविष्य क्यों दंड झेले? कलंकित अहिल्या के साथ रहकर तो दोनों को मानसिक और सामाजिक दंड की यातना से मुक्ति नहीं मिलेगी। पति और पुत्र के भविष्य के लिए उसे स्वयं बलिदान देना पड़ेगा।'

[5]

'समय' सबसे बड़ा कष्ट निवारक होता है। कल की अपेक्षा आज अहिल्या की पीड़ा का वेग कम हुआ था। माँ की थपकी से पुत्र शत, निश्चिन्त सो रहा था। विषाद की पीड़ा से आबद्ध गौतम अन्यमनस्क बैठे हुए थे।

मौन तोड़ते हुए अहिल्या पूछ बैठी, 'क्या सोचते हो महाराज जनक के कुलपति बनने के प्रस्ताव पर?'

'अभी तक मैंने कुछ नहीं सोचा है।'

'अनिर्णय की स्थिति से उबरना होगा गौतम। मेरी समझ बनती है कि तुम्हें महाराज का निमंत्रण स्वीकार कर जनकपुर जाना चाहिए। राजपुरोहित बनकर ही तुम सामर्थ्यवान बन सकते हो। महाराज का स्नेह और विश्वास तुम्हें अभी भी प्राप्त है, तुम्हें निर्णय लेना ही पड़ेगा गौतम।'

'नहीं! नहीं प्रिये मैं इतना स्वार्थी नहीं बन सकता। मैं अपनी असहाय और निर्बल पत्नी को यहाँ अकेला असुरक्षित नहीं छोड़ सकता। इस क्रूर और निर्दयी समाज का सामना तुम नहीं कर सकती हो। मैं कैसे आश्वस्त हो सकता हूँ कि कल कोई दूसरा इन्द्र नहीं आयेगा। इन्द्र तो कदम कदम पर हैं अहिल्या। पद और प्रतिष्ठा के लिए मैं अपनी प्रिय पत्नी की और यातना स्वीकार नहीं कर पाऊँगा, तुम्हें अकेला छोड़कर मुझे कोई पद, कोई गरिमा, कोई ऐश्वर्य स्वीकार नहीं हो पायेगा अहिल्या।'

'आपका विश्वास ही मेरी सबसे बड़ी पूँजी है, इस पूँजी को खोने की शक्ति अब मुझमें नहीं है गौतम। लेकिन आज जो परिस्थिति है, उसमें हम दोनों में से एक को बलिदान देना ही पड़ेगा, और यह बलिदान मुझे ही देना पड़ेगा।

अभी आपकी आयु पैंतीस वर्ष भी नहीं हुई। शेष जीवन पड़ा हुआ है। पुत्र की शिक्षा-दीक्षा अभी प्रारम्भ भी नहीं हुई। उसे राज पुरोहित होने के योग्य बनाना है। मैं अपने पति और पुत्र का भविष्य खोना नहीं चाहती हूँ गौतम, मुझे इतना स्वार्थी मत बनाओ।'

'तो क्या मैं इन दरिन्दों के बीच तुम्हें प्रताड़ित होने के लिए अकेला छोड़ दूँ? नहीं प्रिये मैं ऐसा नहीं कर पाऊँगा।'

'गौतम, राजपुरोहित बनकर ही आप मेरी सुरक्षा की व्यवस्था कर सकते हैं, फिर यहाँ और पड़ोसी हैं। मैं कोई न कोई हथियार रखकर और सजग रहकर अपनी सुरक्षा करूँगी। और एक बात और है स्वामि, आपके यहाँ रहने से इन्द्र बेदाग बना रहेगा। आपके शाप का मूल्य नहीं होगा। यदि आप राजपुरोहित बनकर इन्द्र को शापित करेंगे तो इन्द्र अवश्य दण्डित होगा। आपके शाप की रक्षा महाराज जनक स्वयं करेंगे, हमारे प्रतिशोध की आग का आंशिक शमन अवश्य होगा स्वामि।'

पुत्र और पति के बिना रहना एक असम्भव प्रतीति है गौतम किन्तु अहिल्या को यह त्याग करना ही पड़ेगा।

'इसका अर्थ है अहिल्या कि जीवन भर एक पुत्र अपनी माँ के लिए और एक पति अपनी पत्नी के लिए तड़पता रहेगा।'

'इस पतित अहिल्या का भी कोई उद्धार करेगा स्वामि; फिर हम सब एक साथ मिलेंगे। अहिल्या निष्पाप है। ईश्वर उसे और दण्ड नहीं देगा, ऐसा मेरा विश्वास है।'

'अहिल्या...' गौतम का कंठ रुद्ध हो गया।

'हाँ गौतम, शेष हम ईश्वर के हाथों में समर्पित कर दें। मेरा मोह मत करो स्वामी। इस इन्द्र को दण्डित करने में मेरे किसी भी, त्याग, बलिदान और पीड़ा का मूल्य कम पड़ेगा।

अहिल्या के इस नये रूप को देखकर गौतम को गर्व की अनुभूति हुई। कितना स्वाभिमान है अहिल्या में, अपने स्वाभिमान की रक्षा के लिए, कोई भी त्याग करने के लिए और कोई भी पीड़ा सहने के लिए तैयार है। गर्व से भर उठे गौतम।

तुम्हारी बातों से असहमत होने का कोई भी तर्क नहीं बचा है अहिल्या। और सच पूछो तो मैं स्वयं संसार का कोई भी त्याग करने के लिए तैयार हूँ चाहे वह मेरे पद और गरिमा से जुड़ा हो, चाहे वह पत्नी के सान्निध्य का सुख और आनन्द ही हो किन्तु मैं किसी भी परिस्थिति में इन्द्र को दण्डित करने का लोभ और अवसर खोना नहीं चाहता। पापी इन्द्र को दण्डित करने के लिए मेरी आत्मा तड़प रही है अहिल्या।

'तो अब और अधिक विलम्ब नहीं करना है। कल प्रातःकाल ही पुत्र

शत के साथ जनकपुर जाने की तैयारी कर देते हैं स्वामि।' गौतम गहरे विषाद से भर उठे।

प्रातःकाल अहिल्या ने गौतम को जगाया। शायद वह बहुत पहले से ही जगी थी। गौतम का मन निर्णय को स्वीकार नहीं कर पा रहा था। रह-रहकर मन ग्लानि से भर उठता था। अहिल्या को छोड़कर जनकपुर जाना उनके लिए अनैतिक लग रहा था। ऊहापोह की स्थिति से ऊबर नहीं पा रहे थे गौतम।

अहिल्या का निर्णय अडिग था।

'अनिर्णय की स्थिति से बाहर आइये स्वामि। 'आज' को बचाने के लिए 'कल' को भूलना पड़ता है किन्तु न तो हम 'कल' को भूलेंगे न 'आज' को खोयेंगे। हमारा 'कल' था इन्द्र से प्रतिशोध और हमारा 'आज' मिथिला प्रदेश का राजपुरोहित और कुलपति बनना है' और अहिल्या ने गौतम का हाथ पकड़कर शय्या से उठा दिया।

'शत तुम्हारे बिना कैसे रह सकेगा अहिल्या'।

'मैंने इसकी भी व्यवस्था कर दी है स्वामी। शत अपनी माया मौसी के साथ रहेगा। जनकपुर में माया पहुँचकर शत की प्रतीक्षा कर रही है।'

यात्रा की तैयारी पूरी हो चुकी थी। गौतम शत से बोल उठे, 'अपनी माता के चरण छूओ पुत्र'।

'और शत माँ के चरणों से लिपट गया'।

'जाओ पुत्र, मेरे पहुँचने की प्रतीक्षा करना'।

स्नेह से अभिभूत गौतम की आँखें भर आईं। आलिंगन में आवद्ध अहिल्या को छोड़कर गौतम के पैर ठिठके हुए थे।

अत्यन्त कोमल और स्नेहिल शब्दों में अहिल्या बोली 'मेरा मोह त्यागना ही पड़ेगा स्वामी। अब और विलम्ब मत कीजिए। सूरज निकलने के पहले ही प्रस्थान कर दीजिए।

गौतम शत का हाथ पकड़कर भारी मन से भविष्य की डगर पर चल पड़े...।

...और अहिल्या पति और पुत्र को आँखों से ओझल होने तक निहारती रही।

[6]

जनकपुर पहुँचने पर गौतम का भव्य स्वागत हुआ। पथ के दोनों ओर खड़े नर-नारी आनन्द से अभिभूत हाथ जोड़े गौतम के आगमन पर प्रसन्नता व्यक्त कर रहे थे। अहिल्या का प्रतिबिम्ब कहीं नहीं था। किसी ने भी न तो अहिल्या के बारे में पूछा और न, ही किसी ने जानने का प्रयास किया। गौतम को अनुभव हुआ जैसे अहिल्या के अस्तित्व को विस्मृत किया जा रहा है।

कुलपति के रूप में गौतम को मान्यता पहले ही मिल चुकी थी। कुलपति के शपथ ग्रहण समारोह के लिए यज्ञशाला को महाराज जनक की इच्छा के अनुरूप भव्य रूप दिया गया था।

नगर के गणमान्य व्यक्ति, ऋषि-मुनि, मंत्रिपरिषद के सदस्य एवं स्वयं महाराज जनक गौतम को प्रतिष्ठित करने के लिए तथा कुलपति पद को गरिमा प्रदान करने के लिए यज्ञशाला में उपस्थित थे। पंडितों के मंत्रोच्चार के साथ यज्ञ प्रारम्भ हुआ। गौतम ने विधिविधान से आश्रम के कुलपति पद की शपथ ग्रहण की। यज्ञ सम्पन्न हुआ। गौतम ने महाराज जनक एवं मिथिला प्रदेश के सुख एवं समृद्धि की कामना की। ...और फिर अचानक गौतम गम्भीर हो गये। उनका मुखमण्डल तप के तेज से प्रज्ज्वलित हो उठा। हाथ में जल लेकर सूर्य को साक्षी मानकर अभिमंत्रित किया और गम्भीर वाणी में बोल उठे, 'मैं आश्रम का कुलपति गौतम, इन्द्र को शाप दे रहा हूँ कि 'देवराज पद की गरिमा और प्रतिष्ठा को कलंकित करने वाला इन्द्र आर्यावर्त्त का पूज्य नहीं होगा। हवन, यज्ञ, पूजा, ज्ञान सम्मेलन या अन्य शुभ अवसरों पर न तो उसको आमंत्रित किया जायेगा और न, ही आह्वान किया जायेगा। मैं उसको पूजा के अयोग्य शापित करता हूँ' गौतम ने हाथ का जल छोड़ दिया।

उपस्थित जनसमुदाय सन्न रह गया। सभी उत्सुकता से सोच में पड़ गये 'क्या गौतम के शाप को मान्यता मिलेगी? क्या शाप के मर्यादा की रक्षा हो सकेगी?'

धीर गम्भीर महाराज जनक अपने स्थान पर खड़े हो गये। कुछ क्षणों के लिए विचारमग्न हुए और फिर बोल उठे, 'मैं मिथिला नरेश जनक वचन देता हूँ कि यह मिथिला प्रदेश अपने कुलपति के शाप की रक्षा तब तक करेगा जब

तक कुलपति अपने कुलपति-धर्म और मर्यादा का अनुशरण करते रहेंगे।'

महाराज जनक यज्ञशाला से उठकर चले गये।

धीरे धीरे यज्ञशाला खाली हो गयी। महाराज का संदेश स्पष्ट था। गौतम गम्भीर हो गये और फिर भारी कदमों से अपनी कुटिया की ओर चल पड़े।

कुटिया दूर नहीं थी। पुत्र शत कहीं बाहर खेलने गया था। गौतम शय्या पर बैठते ही विचार मग्न हो गये, 'महाराज ने अपेक्षा से अधिक दृढ़ता से मेरे शाप की रक्षा का वचन दिया। गौतम का मान रखा। कुलपति पद की गरिमा का सम्मान किया।'

'स्पष्ट है, महाराज ने इन्द्र को दोषी माना है और उसके अपराध की सजा को मान्यता भी प्रदान कर दी है। यह सत्य है कि अपराध की गूढ़ता की अपेक्षा दंड हल्का है किन्तु देवराज इन्द्र अपने अपराध के लिए दण्डित तो हुआ। दण्डित करने के मेरे अधिकार को मान्यता प्रदान कर महाराज जनक ने मेरे ऊपर अनुग्रह किया है। मैं महाराज का कृतज्ञ हूँ।'

'महाराज धर्म का अनुशीलन करने वाले ज्ञानी पुरुष हैं, किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि उनकी दृष्टि में जितना यह सत्य है कि अहिल्या निर्दोष है, उतना ही सत्य है कि वह इन्द्र की भोग्या है। निर्दोष रहते हुए भी कलंकित हो गई है और सम्भवतः महाराज की दृष्टि में अहिल्या को गौतम की पत्नी के रूप में स्वीकारना आश्रम के कुलपति पद की गरिमा एवं आर्य धर्म की पवित्रता के अनुकूल नहीं लगता।'

'कैसी विडम्बना है, एक निर्दोष के साथ निर्मम अन्याय भी हुआ और अन्यायी के दंड का हिस्सा भी वही भोग रही है। यह कैसा न्याय है प्रभु? क्या यही आर्यधर्म है?'

अपनी विवशता पर गौतम की आँखों से अश्रुधारा फूट पड़ी।

लौटते ही शत पूछ बैठा, 'माँ कब आयेगी पिता जी?

'प्रतीक्षा करो पुत्र...'

X X X X

कथा कहते कहते महर्षि अचानक रुक गये। करुणा से विगलित उनकी आँखों में जल भर आया। कंठ अवरूद्ध हो गया।

लक्ष्मण का मुखमण्डल क्रोध से तमतमा उठा था। अन्याय की पराकाष्ठा से राम विचलित हो उठे थे।

महर्षि की चुप्पी से लक्ष्मण का धैर्य टूटने लगा था। वह बोल उठे, 'मेरा मन अधीर हो रहा है।'

'कथा को आगे बढ़ाने का सूत्र नहीं मिल रहा है वत्स लक्ष्मण। समाज ने बंधन की दीवार खड़ी कर दी है। दीवार के एक ओर पति गौतम और दूसरी ओर पत्नी अहिल्या पच्चीस वर्षों से एक-दूसरे से मिलने की प्रतीक्षा कर रहे हैं। उनके मिलने के बाद ही कथा आगे बढ़ सकती है पुत्र।'

राम एक गहरे विषाद में डूब गये। 'एक पतिव्रता अबला नारी इस भरे समाज में अपनी पवित्रता की रक्षा नहीं कर सकी। एक बलात्कारी, उत्पीड़क सबके समक्ष उदंडता और निर्लज्जतापूर्वक चला गया क्योंकि उसे रोककर दण्डित करने का साहस कोई नहीं कर सका।

'यह कैसी विडम्बना है कि ऋषि, मुनि, तपस्वी और साधक; जो समाज में धर्म की मर्यादा के पोषक कहे जाते हैं और आर्यावर्त के सम्राट और शासक जिनके ऊपर समाज की रक्षा और न्याय देने का उत्तरदायित्व है, सभी इन्द्र के वैभव और बल से डरे हुए एक अबला पीड़िता को न्याय नहीं दे सके? पच्चीस वर्षों से एक निर्दोष पीड़िता समाज के अन्याय का बोझ ढ़ो रही है। यह निर्लज्ज समाज, जो भय के कारण इन्द्र को तो दण्डित करने का साहस नहीं जुटा सका, किन्तु इसने एक निर्बल और असहाय पीड़िता को वर्षों से धर्म का बंधक बनाकर रखा है।'

'ज्ञान-सम्मेलनों में भाग लेने वाले ऋषि, मुनि और तपस्वी अपने को परम ज्ञानी समझते हैं, किन्तु आचरणविहीन ज्ञान किस काम का? आर्य सम्राट अपने को पराक्रम का प्रतीक समझते हैं किन्तु जो पराक्रम और शौर्य प्रजा के सम्मान की रक्षा न कर सके, उसे न्याय नहीं दे सके, अन्यायी और अत्याचारी का प्रतिकार न कर सके, उसके शौर्य का क्या मूल्य है? यह समाज भीरू और जड़ हो गया है। इस जड़ता को तोड़े बिना समाज को न्याय नहीं मिल सकता। समाज को निर्भय बनाना होगा। निर्भय समाज ही न्याय दे सकेगा?

'कौन तोड़ेगा इस जड़ता को? कौन समाज को निर्भय बनायेगा? शायद यह राम ही इस जड़ता को तोड़ेगा। ...और राम की मुट्ठियाँ बँध गईं।

महर्षि का ध्यान राम के रोष भरे मुखमण्डल की ओर गया। सहसा बोल पड़े, 'क्या सोच रहे हो राम!'।

'गुरुदेव इस कायर और जड़ समाज ने देवी अहिल्या के साथ घोर अन्याय किया है। ऐसा जड़ और यथास्थितिवादी समाज किसी अन्याय, अत्याचार और उत्पीड़न का प्रतिकार कर ही नहीं सकता। इसकी जड़ता को तोड़ना होगा गुरुदेव। आर्य धर्म अपने मूल स्वभाव से भटक गया है। संत समाज सुविधाभोगी हो गया है। भय से ग्रस्त संत समाज मुखापेक्षी हो गया है। इससे न्याय की अपेक्षा नहीं की जा सकती। समाज को भय से मुक्त एवं गतिशील बनाना होगा गुरुदेव!'

'तुम्हारी सोच से मैं सहमत हूँ वत्स राम!'

मुनि ने देखा 'राम की भींची मुट्ठियाँ और चेहरे का भाव किसी निर्णय पर पहुँचने का संकेत दे रहे हैं।'

[7]

आज की यात्रा कुछ विलम्ब से प्रारम्भ हुई। महर्षि किंचित चिन्ताग्रस्त थे।

लक्ष्मण पूछ बैठे, 'गुरुदेव! अभी जनकपुर कितनी दूर है?'

'आज सायंकाल तक पहुँच जाने की आशा है वत्स लक्ष्मण।'

महर्षि ऊहापोह की स्थिति से ऊबर नहीं पा रहे थे। निर्णय का समय आ गया था किन्तु मन रह-रहकर भटक जाता था। जिस पीड़ा का बोझ वे पच्चीस वर्षों से ढो रहे हैं, अन्याय की यंत्रणा से मुक्त नहीं हो पा रहे हैं, उसके प्रतिकार का अवसर आज आ गया है। अनिर्णय की स्थिति से उन्हें उबरना ही होगा।

महर्षि का मुखमण्डल सहज हो चला था। चलने की गति धीमी पड़ने लगी और सहसा महर्षि के कदम रुक गये। महर्षि के रुकने का कारण समझ में नहीं आया, क्योंकि महर्षि एक टक अपने बाँये स्थित एक उपवन को निहार रहे थे।

राम का ध्यान उपवन की ओर गया और विस्मित होकर देखने लगे। अत्यन्त शान्त, निर्मल और नीरव स्थान; कलरव करती पक्षियाँ, निर्भय विचरण करते पशुगण, फूलों से सजी लतिकाएं, फलों से लदे फदे वृक्षों की लम्बी कतारें,

सुरभित, सुसज्जित पुष्प-वाटिकाएं; ऋषियों के आश्रमों की लम्बी कतारें सबकुछ अनुपम, अद्‌भुत, अकल्पनीय, अतुलनीय; और मुग्ध राम की पलकें जैसे स्थिर हो गई थीं। उनकी दृष्टि महर्षि की ओर गई और महर्षि तो जैसे प्रज्ञाविहीन हो गये थे। मुखमण्डल ऊहापोह की स्थिति में दीख रहा था जैसे महर्षि सोच रहे हों कि भीतर जाना चाहिए या नहीं।

उनके कानों में सहसा राम की ध्वनि सुनाई दी, 'गुरुदेव! ऐसा सुन्दर आश्रम मैंने इसके पहले कहीं नहीं देखा है। यह किसका आश्रम है? क्या इसे देखने की अनुमति मिल सकती है?'

'पुत्र राम! यह ऐतिहासिक आश्रम है। करुणा से भरा हुआ इसका इतिहास है' और महर्षि पुनः चिन्तामग्न हो गये।

दूर सरोवर के तट पर चरवाहे पशुओं को पानी पिला रहे थे। सहसा उनकी दृष्टि आश्रम के मुख्यद्वार पर गई। उन्हें आश्चर्य और कुतूहल हुआ 'इस जन-निषिद्ध आश्रम में आज तक किसी ने जाने का साहस नहीं किया, आज कहाँ से यह ऋषिमण्डल आ गया है और उसके साथ दो धनुर्धारी भी हैं। लग रहा है सभी आश्रम के भीतर जाने को उद्यत हैं।'

जिज्ञासा शान्त करने को आतुर वे धीरे-धीरे आश्रम के मुख्य द्वार की ओर बढ़े। उन्हें आश्चर्य हो रहा था कि जिस स्थान का कोई नाम लेने में भी संकोच करता है, जिसे अपवित्र एवं कलंकित स्थान मानकर जनजीवन में निषिद्ध क्षेत्र घोषित कर दिया गया है, वहाँ संन्यासियों का यह दल जान-बूझकर भीतर जा रहा है या भूले भटके लोग हैं जो अनजाने में अल्प आश्रय के लिए जा रहे हैं। वे धीरे-धीरे प्रवेश द्वार की ओर बढ़े।

'इस स्थान की ऐतिहासिकता को स्पष्ट करें गुरुदेव, इस मनोरम स्थान के बारे में जानने को मेरा मन व्यग्र हो रहा है।'

'वत्स राम, यह गौतम मुनि का वही आश्रम है, जहाँ अहिल्या पच्चीस वर्षों से अपने पति और पुत्र से मिलने की प्रतीक्षा कर रही है।'

राम महर्षि की कथा का सार समझने का प्रयास करने लगे। सहसा उनका हृदय करुणा से भर उठा- तो देवी अहिल्या इसी आश्रम में हैं?'

'आश्रम के भीतर चलने की कृपा करें गुरूदेव। इस आश्रम की पवित्र भूमि को नमन करने की इच्छा हो रही है। चलो पुत्र...।'

सभी आश्रम के सुनसान प्रांगण में पहुँच गये। राम सहसा गम्भीर हो गये। जिस स्थान पर इन्द्र के भय से सामान्यजन को कौन कहे, ऋषि, मुनि, तपस्वी, राजा और सम्राट तक आने का साहस नहीं करते, वहाँ गुरूदेव के पदार्पण का क्या उद्देश्य है? कथा कहकर मन को व्यथित और उद्वेलित करने का रहस्य क्या है? क्या मेरे कर्त्तव्य और कर्म का समय आ गया है...?

...अत्यन्त सहज भाव से विनयपूर्वक कहा, 'गुरुदेव! क्या देवी अहिल्या से मिलने की अनुमति मिल सकती है?'

'पुत्र राम, क्या देवी अहिल्या से मिलने की अनुमति मुझे देनी होगी? तुम राजकुमार हो, क्षत्रिय हो, वीर, पराक्रमी और महाबली हो, निर्णय तो तुम्हें ही लेना होगा पुत्र'।

'... और राम ने निर्णय ले लिया। अन्याय के प्रतिकार का समय आ गया है। प्रायश्चित करने का यह क्षण कभी फिर नहीं मिलेगा।'

राम ने अनुमान लगाया, गौतम मुनि की कुटिया परम्परानुसार आश्रम के बीच में ही होगी और चल पड़े सबसे बड़ी और दिव्य कुटिया की ओर, जैसे आश्वस्त हों कि देवी अहिल्या इसी कुटिया में होंगी।

राम ने कुटिया के पट पर हाथ रखा। पट भीतर से बन्द नहीं था, खुल गया। राम ने देखा कुटिया के कोने में एक निष्क्रिय सिमटी हुई महिला बैठी है। कदमों का आहट पाकर वह सहसा सजग हो गई और अविलम्ब पास में ही रखी हुई कल्हाड़ी सम्भाल ली। पच्चीस वर्षों बाद उसने किसी मनुष्य के आने की आहट पाई थी। उसे सहसा विश्वास नहीं हुआ। वह आश्चर्यचकित फटी आँखों से आने वालों को देख रही थी। राम के पीछे महर्षि एवं लक्ष्मण भी भीतर आ चुके थे। अचानक उसकी निगाहें महर्षि पर टिक गई, स्मरण आ गया फिर सहज भाव से संयत होकर बोलीं, 'महर्षि विश्वामित्र, इतने अन्तराल के बाद आप आज किन लोगों के साथ आये हैं? और हाथ की कुल्हाड़ी नीचे आ गई थी।

'देवी अहिल्या, ये लोग मेरे साथ नहीं, बल्कि इन लोगों के साथ मैं आया हूँ'।

राम आगे बढ़े। 'मैं कोसल नरेश महाराज दशरथ पुत्र राम अपने अनुज लक्ष्मण के साथ आपके चरणों में प्रणाम करता हूँ माता अहिल्या'। और दोनों अहिल्या के चरणों में झुक गये।

कोसल नरेश के पुत्र राम और लक्ष्मण? कलंकिनी अहिल्या को प्रणाम कर रहे हैं? मैं यह क्या सुन रही हूँ? मनुष्य की वाणी पच्चीस वर्षों बाद सुन रही हूँ। कानों पर विश्वास नहीं हो रहा है महर्षि विश्वामित्र।

'आप सत्य सुन रही हैं देवि अहिल्या'।

...और अहिल्या का पच्चीस वर्षों के धैर्य का बाँध टूट पड़ा। अश्रुधारा फूट पड़ी। पत्थर को भी पिघला देने वाले आँसू जैसे आज ही के लिए रुके हुए थे। संकट में पड़े व्यक्ति के आँसू अपने आत्मीय के सान्निध्य में समस्त बंधान और मर्यादाएँ तोड़ देते हैं, अहिल्या को भी रोने का सुख बरसों बाद आज ही मिला था। सिसक-सिसककर जैसे अपने अन्दर की समस्त पीड़ा को बाहर निकाल देने को आतुर हो रही थीं। '...पुत्रों! मैं एक कलंकित, समाज द्वारा बहिष्कृत, एकाकी, जड़वत, पाषाणवत जीवन ढोने के लिए अभिशप्त हूँ। पच्चीस वर्षों से अपने पुत्र एवं पति से मिलने की प्रतीक्षा कर रही हूँ। सामाजिक मर्यादा की बेड़ियाँ मेरे पैरों में डाल दी गई हैं पुत्रों! ...और कंठ अवरूद्ध हो गया।

लक्ष्मण की त्यौरियाँ चढ़ गईं। चेहरा क्रोध से तमतमाने लगा, किन्तु करुणा से बिगलित राम की आँखें सजल हो उठी। अन्याय की पीड़ा से दग्ध अहिल्या धीरे धीरे सहज हो रही थीं और महर्षि तो जैसे पच्चीस वर्षों से इसी क्षण की प्रतीक्षा कर रहे थे। आर्यावर्त के सबसे शक्तिशाली सम्राट के राजकुमार, अहिल्या के द्वार पर स्वयं पहुँचे है जहाँ पच्चीस वर्षों में किसी ने आने का साहस नहीं किया। अहिल्या के सामाजिक-शाप से मुक्त होने का समय आ गया है।

विश्वामित्र का संकेत पाकर मुख्यद्वार पर प्रतीक्षा कर रहे संन्यासीगण भीतर आ गये थे। ऋषियों को भीतर जाते देखकर चरवाहे तथा अनेक ग्रामवासी जो प्रवेश द्वार पर खड़े होकर पूरे दृश्य को कुतूहल से देख रहे थे, धीरे धीरे आश्रम के प्रांगण में पहुँच गये।

'राम और लक्ष्मण, तुम लोगों ने मुझे माता कहकर पैर छूआ है। क्या मेरा अभिशाप पूरा हो गया? क्या अब मैं अपने पति और पुत्र से मिल सकती हूँ? क्या समाज मुझे सहज रूप में स्वीकार कर लेगा। मैं अपनी प्रसन्नता समेट नहीं पा रही हूँ पुत्रों। लगता है अपनी जड़ता और पाषाणवत जीवन से मुक्ति के लिए पच्चीस वर्षों से तुम्ही लोगों की प्रतीक्षा कर रही थी। कृतज्ञता व्यक्त करने के लिए मुझे शब्द नहीं मिल रहे हैं। मन में आ रहा है कि तुम्हीं लोगों के चरणों

में सिमटकर अपने भाग्य को सराहूँ। ईश्वर तुम लोगों का कल्याण करे पुत्रों।'

सच पूछों पुत्रों, तो पूरा आर्यावर्त, आर्य समाज, ऋषि, मुनि, संत समाज और शक्तिशाली सम्राट जड़ता की स्थिति में हैं। इस जड़ता को तोड़ने के लिए तुम्हारे जैसे ही युग पुरुष की आवश्यकता है पुत्र राम। आगे बढ़ो, भयमुक्त और जड़ताविहीन चेतन समाज की रचना का समय आ गया है। सम्भवतः समय तुम्हारी ही प्रतीक्षा कर रहा था।'

'इतना सम्मान पाने का अधिकारी मैं नहीं हूँ माते अहिल्या। मैं तो यह बताने आया हूँ कि कलंकित आप नहीं, बल्कि अपने कुकृत्य से इन्द्र कलंकित हुआ है। आप निर्दोष, पवित्र और निर्मल हैं माता। दोषी, अत्याचारी और अहंकारी तो वह इन्द्र है। इन्द्र दंड का भागी है और मैं दशरथ पुत्र राम आपके समक्ष प्रतिज्ञा करता हूँ कि इस जीवनकाल में यदि मुझे इन्द्र मिल गया तो इस अपराध के दंड स्वरूप मैं उसका वध कर डालूँगा।

मैं आपको यह भी आश्वासन देता हूँ कि जो सम्राट, ऋषि-मुनि और जनसमाज आपको स्वीकार नहीं करेगा, आपकी प्रतिष्ठा के प्रतिकूल आचरण करेगा, उसे मेरे प्रतिरोध का न केवल सामना करना पड़ेगा अपितु मैं उसे समूल नष्ट कर दूँगा माता।'

आप प्रसन्नतापूर्वक, निःसंकोच, निर्भय होकर अपने पुत्र और पति से मिलिए देवि। आपको परित्यकता और बहिष्कृता कहने का साहस कोई नहीं करेगा। मैं आपको वचन देता हूँ माता।'

आपका बीता हुआ कल तो मैं नहीं लौटा सकता किन्तु इस समाज ने आपके साथ जो अन्याय और अत्याचार किया है उसके लिए मैं समस्त समाज की तरफ से आपसे क्षमा याचना करता हूँ देवि।'

विश्वामित्र प्रसन्नता से खिल उठे। आँखे हर्ष से सजल हो उठीं। सहसा उनका कंठ खुला, 'तुम श्रेष्ठ हो राम, मेरी कल्पनाओं से अधिक और अपेक्षाओं से परे नायकत्व है तुममें। तुम निर्भय, स्पष्ट विचारों वाले, न्यायप्रिय जननायक हो, युगपुरुष हो, मेरा स्नेह और आशीष सदैव तुम्हारे साथ रहेगा। तुम धन्य हो राम।

अहिल्या जैसे तन्द्रा से जागी। 'मैं तो अपनी प्रफुल्लता में अपना धर्म और कर्त्तव्य ही भूल बैठी महर्षि विश्वामित्र'। उसने कुश की चटाइयाँ फैला दीं

और सबसे बैठने का आग्रह किया। फिर दौड़-दौड़कर विभिन्न प्रकार के फलों को एकत्रित कर निर्मल जल से धोया और धुले हुए केले के पत्तों पर परोस कर ग्रहण करने के लिए हाथ जोड़ दिया।

'...सहसा अहिल्या सहम गई। बोल उठी, 'मेरे हाथ का छूआ...'।

'देवि अहिल्या! लगता है आप अभी भय से मुक्त नहीं हुईं' बीच में ही टोकते हुए विश्वामित्र ने कहा।

... और अहिल्या ने देखा 'राम और लक्ष्मण आनन्दपूर्वक फलों का स्वाद ले रहे हैं।'

विश्वामित्र की दृष्टि कोलाहल सुनकर अचानक पीछे की ओर मुड़ी। उन्होंने अप्रत्याशित रूप से उपस्थित ग्रामीणों को देखा, जो पूरे परिदृश्य को कुतूहलपूर्वक देख रहे थे। वे विस्मृत आँखों से कभी राम-लक्ष्मण को और कभी अहिल्या को निरख रहे थे। संन्यासियों द्वारा उन्हें ज्ञात हो गया था कि कोसल नरेश महाराज दशरथ के पुत्र राम जिन्होंने ताड़का और सुबाहु जैसे शक्तिशाली राक्षसों का वध किया है, वे अपने अनुज लक्ष्मण के साथ गौतम पत्नी अहिल्या से मिलने आये हैं।

'महर्षि, राम-लक्ष्मण और अहिल्या के साथ ग्रामीणों के पास पहुँचे। अपराधबोध से ग्रसित ग्रामीण प्रायश्चित स्वरूप भींगी पलकों के साथ हाथ जोड़े खड़े हो गये।

'क्या मैं अपने पति और पुत्र से मिल सकती हूँ महर्षि विश्वामित्र?'

'तैयार हो जाइए देवि। हमलोग जनकपुर ही जा रहे हैं। रास्ते में आपको गौतम के आश्रम में छोड़कर हमलोग जनकपुर चले जायेंगे।

[8]

युगों का अन्धेरा पलों में छँट चुका था। अन्तहीन कष्टों, तनावों और दुःखों से मुक्ति मिल चुकी थी। मुक्तिदाता की प्रतीक्षा व्यर्थ नहीं गई।

आज अहिल्या को अलौकिक आनन्द की अनुभूति हो रही थी। पति और पुत्र मिलन की उत्कंठा से बार बार रोमांचित हो उठती। कल्पना की अन्तहीन लहरों में बार बार डूब जाती- कैसे होंगे गौतम? कैसा होगा शत?

'किस सोच में पड़ गयीं देवि अहिल्या? क्या पति और पुत्र की याद आ रही है?' महर्षि विश्वामित्र पूछ बैठे।

... और धैर्य का बाँध टूट पड़ा। अहिल्या के अन्तर में उफनती दर्द की लहरों को होंठ सम्भालने में असमर्थ होने लगे। वह फूट पड़ी और आँसुओं के वेग में शब्द बह चले। हिचकियों के बाँध बनने और टूटने लगे।

'अपनी भावनाओं को नियंत्रित करो देवि अहिल्या और अपमान, कुंठा, पश्चाताप और प्रतिशोध की वर्षों से संचित गठरी को यहीं छोड़ दो। उल्लास, उमंग और उत्साह से भरा 'कल' आपकी प्रतीक्षा कर रहा है। आप निष्कलंक, निष्पाप और निर्मल हैं। अपराधबोध से मुक्त हो जाओ देवि। अब आप निर्बल नहीं सबल हैं। आपके सम्मान की रक्षा के लिए राजकुमार राम खड़े हैं। राम को चुनौती देने का साहस इन्द्र भी नहीं कर सकता। उठो और निश्चिन्त मेरे साथ चलो देवि।'

...और अहिल्या अपने मुक्तिदाता को यहाँ तक पहुँचाने वाले महर्षि को कृतज्ञ नजरों से एकटक देखने लगी।

'चलो देवि, अब विलम्ब हो रहा है। एक पहर दिन रहते हमें जनकपुर के नगर क्षेत्र में पहुँच जाना है।'

और अहिल्या चल पड़ी।

नियति का शायद हर पल एक अनबूझ पहेली है। अन्धेरी कुटिया में जिस अहिल्या का साथ उसकी साया भी छोड़ चुकी थी, आज उसकी रक्षा के लिए शक्तिशाली अयोध्या के राजकुमार राम और लक्ष्मण उसके पार्श्व में चल रहे थे।

चलते-चलते महर्षि अचानक एक कुटिया के सामने रुक गये। कुटिया के बाहर मंच पर बैठे ध्यानमग्न ऋषि की तन्द्रा टूटी। विस्फारित नेत्रों में अकल्पनीय, अविश्वसनीय दृश्य और फिर किंचित किंकर्त्तव्यविमूढ़ की स्थिति। सहसा आँखें सजल हो उठी... अहिल्या... और ऋषि गौतम हर्षातिरेक में लोक मर्यादा भूल दौड़ पड़े... प्रिये अहिल्या...। और आँसुओं से तर आँचल सम्भालते अहिल्या पति गौतम के चरणों से लिपट गई।

उल्लसित मुनि गौतम का चेहरा करुणा से भर उठा। उनकी दृष्टि महर्षि के पार्श्व में खड़े राम और लक्ष्मण पर पड़ी। कृतज्ञ भाव से बोल उठे,

महर्षि विश्वामित्र! मेरी वाणी अवरूद्ध हो रही है। कुछ कहने और कृतज्ञता व्यक्त करने के लिए शब्द नहीं मिल रहे हैं। इसी वय में ऐसा अकल्पनीय चमत्कार, ऐसा अद्‌भुत साहस, ऐसा अद्‌भुत कर्म; ऐसा तो कभी न देखा था और न कभी सुना था।

राम और लक्ष्मण मुनि गौतम के चरणों में झुके और गौतम दोनों को पार्श्व में भींजते भाव विह्वल हो उठे, 'वत्स राम! मैं नीर, अम्बर और इस ध ारा को साक्षी मानकर, अपनी तपस्या के सम्पूर्ण अर्जित पुण्य के साथ तुम्हें आशीर्वाद देता हूँ कि अहिल्या के उद्धारक के रूप में तुम्हारी यह धवल-कीर्ति हर युग का आदर्श बनें।'

महर्षि विश्वामित्र आगे बढ़े और ऋषि गौतम को आलिंगनबद्ध कर लिया।

महर्षि बोले, 'अच्दा ऋषिवर, अब आज्ञा दीजिए, राम और लक्ष्मण को सीता-स्वयंवर दिखाने लाया हूँ।'

X X X X

तृतीय खण्ड

महर्षि विश्वामित्र, राम और लक्ष्मण को साथ लेकर जनकपुर के नगर क्षेत्र के समीप पहुँच गये। नगर के बाहर एक शीतल सरोवरयुक्त सुन्दर आम्रवाटिका देखकर वहीं शिविर लगाने का निर्देश दे दिया। फिर एक संन्यासी को राजपुरोहित के यहाँ भेजकर अपने आने की सूचना भेज दी। लौटकर संन्यासी ने संदेश दिया कि सायंकाल स्वयं महाराज जनक राजपुरोहित के साथ महर्षि विश्वामित्र की सेवा में उपस्थित होंगे।

सायंकाल महाराज जनक अपने सचिव और कुल पुरोहित के साथ महर्षि विश्वामित्र की सेवा में उपस्थित हो गये। महर्षि के चरणों में सिर झुकाकर प्रणाम किया और उनसे राज अतिथि गृह में चलने का आग्रह किया किन्तु महर्षि ने अमराई में ही रहना पसन्द किया। महाराज जनक ने अपने सचिव से अमराई में ही ठहरने की उत्तम व्यवस्था करने का निर्देश दिया।

महर्षि के साथ दो युवा कुमारों को देखकर महाराज जनक अपनी जिज्ञासा रोक नहीं पाये। उन्होंने पूछा, क्या ये दोनों युवा ऋषिकुमार हैं या किसी राजवंश से इनका संबंध है? महर्षि ने राम-लक्ष्मण का परिचय दिया और राम, लक्ष्मण ने महाराज जनक का चरण स्पर्श कर आशीर्वाद प्राप्त किया। राजा जनक का जीवन तो एक योगी का जीवन था, सम्पूर्ण प्रलोभनों एवं माया से मुक्त किन्तु दोनों राजकुमारों को देखकर सहसा मोहग्रस्त हो गये। अपने निर्णय और प्रतिज्ञा पर उनका मन विचलित होने लगा किन्तु फिर सोचने लगे, आज यह मोहग्रस्तता कैसे आ गई? उन्होंने अपने को संयत किया और महर्षि से पूछ बैठे, 'मुनिवर, क्या कोसल नरेश के पुत्र आपके शिष्य हैं?'

महर्षि ने बताया दोनों राजकुमार कोसल राज्य के कुलगुरु महर्षि वशिष्ठ के शिष्य हैं। मैं इन्हें राजा दशरथ से माँगकर अपनी यज्ञ रक्षा के लिए लाया था। मेरे यज्ञ की रक्षा करते हुए राजकुमार राम ने आततायी ताड़का और उसके भाई सुबाहु का वध कर मेरा यज्ञ पूरा करा दिया है। अब दोनों भाई यथाशीघ्र अपनी राजधानी लौट जायेंगे।

धनुष यज्ञ में मुझे सम्मिलित होना था। मैं इन दोनों भाइयों को यज्ञ

दिखाने का लोभ संवरण नहीं कर सका।

'यह तो आपकी महती कृपा और मेरे ऊपर अनुग्रह है मुनिवर। दोनों राजकुमारों के साथ आपका धनुषयज्ञ में सम्मिलित होना मेरा परम सौभाग्य और शुभ है मुनिवर।'

'अब चलने की अनुमति चाहता हूँ मुनिवर। यदि व्यवस्था में कोई त्रुटि हो या कमी हो तो बताने की कृपा करें ताकि आप सबका विश्राम सुखद और आनन्दमय हो।'

आप चिन्ता न करें राजन। हमें अब किसी वस्तु की आवश्यकता नहीं है। आप निश्चिन्त होकर जाएँ। कल निर्धारित समय पर हमलोग आपके यज्ञ में सम्मिलित होंगे।

राजा जनक की सादगी और विनम्रता देखकर राम मुग्ध हो गये। मुनि विश्वामित्र के सम्मान में महाराज स्वयं चलकर यहाँ तक आये, यह तो अद्भुत विनयशीलता है। यज्ञ में आये अतिथियों के यहाँ स्वयं पहुँचकर उनका कुशल-क्षेम पूछना और उनके रहने की व्यवस्था का स्वयं प्रबंधन देखना विस्मयकारी और अनुकरणीय है।

राम एकांत पाकर विचारमग्न हो गये। महर्षि मुझे कुछ दिनों के लिए मांगकर लाये थे। राक्षसों के भय से पूरा क्षेत्र आक्रान्त था। राक्षस पराजित होकर दूर भाग गये। महर्षि का यज्ञ पूरा हुआ, सामान्यजन भयमुक्त हुआ किन्तु महर्षि ने हम दोनों भाइयों को अयोध्या लौटाया नहीं। आगे बढ़े। यात्रा पथ में अन्याय पीड़िता की कथा कहकर मन को उद्वेलित किया और जन-बहिष्कृत, अन्याय पीड़िता को न्याय दिलाया, सामाजिक स्वीकृति प्रदान कराई। महर्षि के सभी कार्य योजनाबद्ध हुए हैं, निर्धारित लक्ष्य की प्राप्ति के लिए हुए हैं, अन्याय के प्रतिकार के लिए हुए हैं किन्तु यहाँ जनकपुर आने का उद्देश्य समझ में नहीं आ रहा है। तो फिर राजा जनक के इस धनुष यज्ञ में सम्मिलित होने में महर्षि का क्या उद्देश्य हो सकता है? लक्ष्य की समझ से उसे प्राप्त करने में सुगमता होती है। लगता है गुरुदेव से पूछना ही पड़ेगा।

महर्षि की दृष्टि राम पर पड़ी। उन्हें आभास हुआ कि राम कुछ

पूछना चाहते हैं किन्तु महर्षि की अपनी योजना थी। 'राम! लगता है कुछ पूछना चाहते हो।'

'हाँ गुरुदेव, मेरे मन में कुछ पूछने की इच्छा हो रही है।'

'वत्स, अभी थोड़ा समय बचा है, मैं चाहता हूँ कि तुम लोग पहले प्रकृति एवं मानव निर्मित सुनियोजित एवं अद्‌भुत विन्यास से सजी इस नगरी के बारे में कुछ जानकारी प्राप्त कर लो। जनकपुर बागों एवं तड़ागों का नगर है। कलरव करते विभिन्न प्रजातियों के पक्षी, फलों से लदे फँदे वृक्ष, सुगन्धित पुष्पों की कतारें नगर की शोभा में चार चाँद लगाते हैं। भरे हुए जलाशयों से इस नगर को अद्‌भुत शीतलता प्राप्त होती है। राजा जनक स्वयं एक विद्वान, ज्ञानी, शास्त्रों के ज्ञाता और मर्यादित आचरण वाले व्यक्ति हैं। इनका जीवन अत्यन्त सहज, सरल, आडम्बर से मुक्त, दम्भरहित एक योगी की तरह है। यहाँ की प्रजा सुखी और सम्पन्न है। पूरे नगर में कहीं अभाव नहीं दिखेगा। आमजन अत्यन्त सुसंस्कृत, ज्ञानी और व्यवहार कुशल हैं। राजमहल की शोभा मुग्धकारी है, राज-सभा, अतिथि-गृह एवं यज्ञशाला अनुपम और अलौकिक हैं।

लक्ष्मण बोल उठे, 'इस नगर को देखने की प्रबल इच्छा हो रही है।'

'चलो पुत्र, मेरी भी इच्छा है कि तुमलोग इस नगर के विन्यास, इसकी अलौकिक सुन्दरता और यहाँ के वैभव को एक बार अवश्य देख लो।'

इस नगर में प्रवेश के पहले ही राम के यश एवं कीर्ति की सुगन्ध नगर में फैल चुकी थी। राम-लक्ष्मण को देखने के लिए पूरा नगर वीथिकाओं में उमड़ पड़ा। दोनों भाइयों के असाधारण, तेजस्वी, पुष्ट एवं सुन्दर रूप को देखकर लोगों की आँखे चमत्कृत हो उठीं। सीता के लिए श्याम वर्ण के मोहक रूप और असाधारण शौर्य वाले राजकुमार राम से अधिक योग्य वर की तो कल्पना ही नहीं की जा सकती। किन्तु क्या राम, जनक की प्रतिज्ञा पूरी कर पायेंगे, शिव धनुष की प्रत्यंचा चढ़ा पायेंगे? ऐसा तो अभी तक कोई नहीं कर पाया। लोगों के मन में जनक की प्रतिज्ञा से सहज ही आक्रोश हो जाता। काश! युवराज राम ऐसा कर पाते।

'गुरुदेव! यह नगर आपने जितना बताया, उससे भी सुन्दर, सुव्यवस्थित

एवं सुखी है। यहाँ के कण-कण में आनन्द दिखता है। सबकी आँखों में आशा और प्रसन्नता का भाव है। लगता है यहाँ की शीतल, सुवासित वायु ने सबका आलस्य और प्रमाद छीनकर सजगता एवं स्फूर्ति प्रदान कर दी है।' राम ने अपना विचार प्रकट किया।

'हाँ पुत्र, कल हमलोग राजमहल के विभिन्न कक्षों को देखेंगे। चलो अब अपने शिविर में लौटेंगे।'

शिविर में एकांत देखकर मुनि पूछ बैठे, 'वत्स राम, तुमने कुछ जानने की जिज्ञासा प्रकट की थी, बोलो क्या जानना चाहते हो?'

'गुरुदेव! यहाँ धनुषयज्ञ में आने का उद्देश्य मेरी समझ में नहीं आता।'

'मेरे उद्देश्य का फलक बहुत बड़ा है राम। अनेक उद्देश्य हैं और सभी एक-दूसरे से जुड़े हैं। एक को छोड़कर दूसरे की कल्पना नहीं की जा सकती। तुमको जनकपुर तक लाने में भी मेरा एक उद्देश्य है। तुम्हारे निर्माण का जो लक्ष्य मैंने बनाया है, उसके अन्तिम चरण का अवसर यही मिल सकेगा राम। इसके बिना निर्माण की प्रक्रिया अधूरी रह जायेगी।

राम, यह तथ्य तो स्पष्ट हो चुका है कि जनक ने अपनी पुत्री सीता के विवाह हेतु यह धुनष यज्ञ आयोजित किया है। 'यह सीता कौन है?' इसकी एक सर्वव्याप्त कहानी है। एक बार राजा जनक जनलोक की मान्य परम्परा के अनुसार वर्षा के निमित्त खेत में हल चला रहे थे। हल चलाते समय खेत में ही रोती हुई कोई नवजात शिशु मिली। माता-पिता ने किसी कारणवश शिशु को खेत में छोड़ दिया था। प्रजा वत्सल जनक को दया आई। उन्होंने शिशु को उठाकर उसके पालन पोषण के लिए किसी अन्य को न देकर अपनी महारानी सुनयना की गोद में रख दिया। इस प्रकार अज्ञातकुलशीला इस शिशु को महारानी ने अपनी पुत्री मानकर राजकुल की मर्यादानुसार इसका पोषण किया एवं राज-परिवार के समस्त संस्कारों से इसे अलंकृत किया।

शिशु सीता सयानी हुई और इसके अद्‌भुत एवं अनुपम सौंदर्य की चर्चा सर्वत्र होने लगी। शिशु रूप में जनक ने इसके धर्म, जाति एवं गोत्र की

कल्पना नहीं की थी किन्तु यौवन प्राप्त पुत्री के विवाह का जब समय आया तो आर्य सम्राटों में इसके अज्ञात कुल और गोत्र की बातें बाधक बनने लगीं। जनक अपनी पुत्री सीता का विवाह किसी राज-परिवार के सुयोग्य राजकुमार के साथ ही करना चाहते हैं क्योंकि यही सर्वगुण सम्पन्न एवं असाधारण रूपवती सीता एवं उनके स्वयं की प्रतिष्ठा के अनुकूल होगा।

जनक किसी आर्येत्तर जाति में सीता को देना नहीं चाहते और आर्यसम्राट, कुल, गोत्र के बंधन से मुक्त नहीं हो पा रहे हैं। एक पिता अपनी पुत्री को सुयोग्य हाथों में ही सौंपने का आकांक्षी होता है पुत्र राम।

इसी संकट के निवारण हेतु जनक ने इस धनुष यज्ञ को आयोजित किया है। इस धनुष की भी एक कहानी है राम। कहा जाता है कि एक बार महादेव शिव ने एक युद्ध के बाद अपना धनुष राजा जनक के पूर्वजों को ध रोहरस्वरूप रखने के लिए दे दिया था। महादेव शिव अनेक दिव्यास्त्रों के ज्ञाता थे और अपने दिव्यास्त्रों का प्रक्षेपण इसी धनुष से करते थे। इस प्रकार, यह असाधारण धनुष है। यह धनुष जनक के पूजा गृह में रखा गया है, जहाँ जनक इसकी नियमित पूजा करते हैं। आजतक इस धनुष के संचालन की विधि किसी को भी ज्ञात नहीं है, किन्तु भविष्य में यदि किसी अनुसंधान द्वारा इसके संचालन की विधि किसी को मालूम हो गई तो इस धनुष का दुरूपयोग हो सकता है। विशेष रूप से यदि आसुरी शक्तियों के हाथ में यह धनुष और इसके संचालन की विधि प्राप्त हो जायेगी तो आसुरी शक्तियाँ अजेय हो जायेंगी और मनुष्य एवं दैवी-शक्तियों पर उनको अनिवार्य बढ़त प्राप्त हो जायेगी; इसलिए किसी अयोग्य पात्र के हाथों में जाने से बेहतर इसको नष्ट कर देना है।

इस धनुष से सीता के सम्बद्ध होने की भी कथा है वत्स। पूजा गृह में रखे इस धनुष की सफाई और पूजा गृह की साज-सज्जा कोई अनुचर नहीं करता। पूजा घर में किसी अनुचर का तो प्रवेश भी वर्जित है। अतः पूजा घर की सम्पूर्ण व्यवस्था का भार राजपरिवार के सदस्यों पर ही निर्भर है। एक दिन जनक ने देखा कि जिस धनुष को कोई देवता, मनुष्य, राक्षस, नाग, किन्नर और गन्धर्व तक नहीं उठा सकता उसे उनकी पुत्री सीता एक हाथ से उठाकर उसके नीचे की

धूल पोछ रही है। राजा जनक को जहाँ भारी आश्चर्य हुआ वहीं उनकी चिन्ता भी बढ़ गई।

'कैसी चिन्ता गुरूदेव?' राम ने जिज्ञासा प्रकट की।

'राजा जनक की चिन्ता स्वाभाविक थी पुत्र। वह सोचने लगे कि इतनी बलशाली, महिमामयी और सुयोग्य पुत्री के लिए इसके अनुरूप वर कहाँ मिलेगा? इसी चिन्ता के निराकरण के लिए जनक ने यह स्वयंवर रचा है और उसमें एक शर्त रख दी है कि जो व्यक्ति इस शिव-धनुष को उठाकर इसकी प्रत्यांचा चढ़ा देगा उसी के साथ पुत्री का विवाह करेंगे। अयोग्य हाथों में सीता को सौंपने से तो सीता का क्वांरी रह जाना ज्यादा श्रेयस्कर है।'

'यह तो विचित्र स्थिति है गुरुदेव' राम के मुँह से अनायास निकला। 'एक असाधारण सुन्दर, गुणवती, महिमामयी राजकुमारी के साथ विवाह के लिए कोई आर्य राजकुमार सामने नहीं आया। मनुष्य किस जाति, धर्म और गोत्र में पैदा हुआ, इसमें उसका क्या दोष है? यदि ऐसे किसी व्यक्ति के साथ भेद-भाव किया जाता है तो यह उसके साथ घोर अन्याय एवं अमानुषिक कार्य है गुरुदेव। यह तो मानव सम्मान के सर्वथा प्रतिकूल है और किसी व्यक्ति को बिना किसी दोष के दण्डित करने के समान है।'

'तुम्हारी अभिव्यक्ति से मेरी सोच को बल मिला है वत्स।'

'राम, एक और उत्तरदायित्व का भार है राजा जनक पर।'

'कैसा भार गुरूदेव?'

'वत्स, आर्य शक्तियाँ क्रमशः क्षीण होती जा रही हैं। सम्राट आपसी द्वेष एवं परस्पर कटुता से ग्रस्त हैं। राजा विलासी हो गये हैं और उनकी सैन्य शक्तियाँ कमजोर पड़ रही हैं। आर्य धर्म के मूल्य छीजते जा रहे हैं। आसुरी शक्तियाँ स्वाभाविक रूप से बलवती होती जा रही हैं। आर्यों के और पराभव को रोकने तथा उनमें आपसी प्रेम और सौहार्द्र बढ़ाने की महती आवश्यकता है। अतएव जनप्रतिनिधियों के एक शिष्टमंडल ने राजा जनक से मिलकर उन्हें यह उत्तरदायित्व सौंपा है कि वे किसी ऐसे जननायक का चुनाव करें जिसमें ऐसे नायकत्व के गुण हों जो मित्र एवं शत्रु के बीच तथा पूरे आर्यावर्त में अपने को

सिद्ध कर सके और सम्पूर्ण आर्य शक्तियों को एक सूत्र में पिरो दे। राजा जनक के मस्तिष्क में यह धनुष-यज्ञ एक सर्वमान्य जननायक को खोजने में भी सहायक होगा पुत्र राम।

राम शान्त चित्त गुरुदेव की वाणी सुनते रहे। उन्हें गुरुदेव की सोच और उद्देश्य की व्यापकता पर आश्चर्य हो रहा था। आर्यों के कल्याण, उनकी एकजुटता एवं सामाजिक अन्याय के विरूद्ध उनकी सोच की गहराई से राम चकित थे।

गुरुदेव के सोच की तंद्रा फिर भंग हुई। बोल उठे, 'पुत्र राम! इसी परिप्रेक्ष्य में विसंगतियों एवं अन्याय के विरूद्ध संघर्ष के लिए तुमको लाया हूँ। मिथिला एवं कोसल राज्यों में कभी एकजुटता नहीं रही, इनके बीच कभी सौहार्द्र एवं प्रेम का संबंध नहीं रहा। ...और सच पूछो तो इन दोनों राज्यों के बीच कटुता और द्वेष का ही संबंध रहा है।

यदि दानों राज्यों के बीच वैवाहिक संबंध हो जाता है तो यह व्यापक रूप से न केवल दोनों राज्यों के लिए कल्याणकारी होगा बल्कि पूरे आर्यावर्त के व्यापक हित में होगा। जाति-पाँति, ऊँच-नीच, कुल-गोत्र एवं अनेक विसंगतियों से जकड़े आर्य समाज में अज्ञात-कुलशीला सर्वगुण सम्पन्न, परम सुन्दरी जनक की पालित पुत्री सीता का विवाह भी योग्य वर से हो जायेगा। सीता के विरूद्ध हो रहे सामाजिक अन्याय का प्रतिकार भी हो जायेगा और मिथिला और कोसल राज्यों की एकजुटता से एक महाशक्ति का उदय होगा, जिससे आर्य सम्राटों की एकजुटता आसान हो जायेगी। एकजुट आर्य शक्तियों को राक्षसों के विरूद्ध संघर्ष में बढ़त मिलने की सम्भावना प्रशस्त हो जायेगी वत्स राम।

राम कुछ बोले नहीं।

'पुत्र राम! इस संबंध में मैं तुमसे कोई वचन नहीं लेना चाहता और न तुमको प्रतिबद्ध करना चाहता हूँ, मैंने केवल अपनी सोच बताई है। इस विषय में सोचना और निर्णय लेना तुम्हारी जिम्मेदारी है। तुम्हारी स्वीकृति के बाद ही इसमें आगे की किसी योजना पर विचार करना सम्भव होगा।

राम विचारमग्न हो गये। अयोध्या से जब चले थे तो वहाँ पर मेरे

विवाह की ही चर्चा हो रही थी। मुनि वशिष्ठ पिताश्री को किसी उत्तम कुल गोत्र वाले राजवंश की किसी कन्या के साथ विवाह की सलाह दे रहे थे। मुनि वशिष्ठ की दृष्टि में कुल गोत्र की पवित्रता किसी अन्य कारक की अपेक्षा ज्यादा महत्त्वपूर्ण थी किन्तु मुनि विश्वामित्र की दृष्टि में कुल, गोत्र मानवनिर्मित व्यवधान है, कन्या का गुण ही महत्त्वपूर्ण है।

राम का अपना जीवन दर्शन है। अपना चिन्तन है। उनके जीवन के लक्ष्य निर्धारित हैं। उन्हें तो कोई ऐसी ही जीवन-संगिनी चाहिए जो उनके जीवन-लक्ष्य को प्राप्त करने में सहयोग करे। उनके जीवन दर्शन को स्वीकार करे।

गुरुदेव ने सीता के संबंध में जो कुछ बताया है उसके अनुसार वह उपयुक्त पत्नी हो सकती है, किन्तु इसमें कुछ व्यवधान दिख रहे हैं। सबसे बड़ा व्यवधान तो यही है कि शिव धनुष के बारे में मुझे कोई जानकारी नहीं, उसे देखा तक नहीं है। वह अत्यन्त विशिष्ट धनुष है जिसके संचालन का ज्ञान देव, दानव या मानव किसी को भी नहीं है तो फिर राम क्या कर पायेगा? दूसरी बात यह है कि सीता की इच्छा का भी सम्मान होना चाहिए। क्या सीता मुझे वर के रूप में स्वीकार करेंगी। ...और फिर सीता की इच्छा का पता कैसे चल पायेगा?

महर्षि, राम के उत्तर की प्रतीक्षा कर रहे थे क्योंकि राम के उत्तर के बाद ही आगे की दिशा तय की जा सकती है।

'गुरुदेव, मैंने विचार किया है, मैं कर्म के लिए तैयार हूँ किन्तु मुझे शिव-धनुष के बारे में कोई ज्ञान नहीं है, उसका परिचालन मैं कैसे कर पाऊँगा? और दूसरी बात है कि सीता की इच्छा के बारे में भी जानकारी होनी चाहिए।'

पुत्र राम! जनक की पालित पुत्री सीता के अज्ञात कुल गोत्र की होने की जानकारी के बाद भी यदि तुम उससे विवाह के लिए तैयार हो तो शिव धनुष की चिन्ता का भार मुझ पर छोड़ दो। इतना अवश्य कहना चाहूँगा कि तुमने उत्तम निर्णय लिया है। सीता तुम्हारे विश्वास की रक्षा करेगी। वह एक योग्य पत्नी होगी, ऐसा मेरा विश्वास है।

जहाँ तक सीता की इच्छा जानने का प्रश्न है तो उसके लिए हमारे पास कोई उपाय नहीं है। यह जनक का उत्तरदायित्व है कि विवाह के पूर्व वह

सीता की इच्छा जानकर उसका सम्मान करें। वैसे जहाँ तक मेरी जानकारी है, सीता का अपने पिता के साथ अत्यन्त आत्मिक संबंध है और जनक अपनी पुत्री के विवेक और ज्ञान को पूरा सम्मान देते हैं। सीता के संबंध में वह उसकी इच्छा का सम्मान करेंगे और उसकी इच्छा के विपरीत कोई निर्णय नहीं लेंगे। फिर भी मैं जनक को अपनी पुत्री की इच्छा जान लेने के लिए संकेत कर दूँगा।

आओ पुत्र! महादेव शिव के धनुष के संचालन की विधि तुम्हें समझाऊँ। तुम अपना धनुष लेकर मेरे समक्ष बैठ जाओ।

राम, धनुष के साथ महर्षि के समक्ष बैठ गये। महर्षि ने बताना प्रारम्भ किया।

राम! शिव धनुष में अवरोधक शक्तियाँ लगी हैं बिना इन शक्तियों को हटाये धनुष का संचालन नहीं हो सकता। यह देखो यहाँ पर पहला अवरोधक लगा होगा, इसको इस प्रकार मोड़ोगे तो पहला अवरोधक निष्क्रिय हो जायेगा। पहले अवरोधक के निष्क्रिय होने के बाद ही दूसरा अवरोधक खुल सकता है। दूसरा अवरोधक धनुष के इस भाग में है, अब अगर इसको इस तरफ मोड़ोगे तो यह निष्क्रिय हो जायेगा। अब धनुष तो उठ सकता है किन्तु प्रत्यांचा चढ़ाने के लिए तीसरे एवं अन्तिम अवरोधक को जो यहाँ पर होगा, उसको निष्क्रिय करने के लिए अवरोधक को इस तरफ मोड़ोगे किन्तु इस अवरोधक को हटाने में ही तुम्हारे वास्तविक पुरुषार्थ की परीक्षा होगी। अगर तुम इसमें सफल हुए तो धनुष को आसानी से उठाया जा सकता है और उस पर प्रत्यांचा चढ़ाने में कोई कठिनाई नहीं होगी।'

मैं समझ गया गुरुदेव! अब मैं अवरोधकों के मोड़ने की दिशा का अभ्यास कर लेता हूँ।

शिव-धनुष की जटिलता की कहानी सुनकर राम अपना आत्म-विश्वास खो चुके थे किन्तु धनुष की संचालन-विधि जानकर उनका आत्म-विश्वास लौट आया। ऊहापोह की स्थिति समाप्त हो गई। राम सहज हो गये। मुखमण्डल दीप्त हो उठा। कृतज्ञ भाव से गुरुदेव को नमन किया।

लगता है, साहस, संकल्प, ज्ञान और कर्म का सम्बल देकर गुरुदेव,

साधारण राम को असाधारण; नायक से महानायक बनाना चाहते हैं। अयोध्या के राजकुमार को आर्यावर्त का जननायक बनाने को संकल्पित हैं, सीमित को असीमित रूप से सँवारना चाहते हैं गुरुदेव। श्रद्धा से अभिभूत राम अपने भीतर ऊर्जा प्रवाह से खिल उठे। गुरु-कृपा से एक नये राम का उदय हो चुका था।

राम की सोच को एक नई दिशा मिली।

'तो राजा जनक ने यह धनुष यज्ञ केवल अपनी पुत्री सीता के विवाह के निमित्त ही नहीं आयोजित किया है, बल्कि यह धनुष यज्ञ एक युगनायक की खोज का भी अभियान है। राजा जनक एक ऐसे व्यक्ति को सबके समक्ष प्रस्तुत करना चाहते हैं जो निर्धारित मानदण्डों को पूरा कर समस्त आर्यावर्त में अपनी अद्वितीयता को प्रमाणित कर सकें।'

मुनि विश्वामित्र ने सबके साथ भोजन किया। भोजनोपरांत सभी अपने-अपने कक्षों में शयन हेतु चले गये।

[2]

रोज की तरह ब्रह्म मुहुर्त में ही राम-लक्ष्मण उठ गये। स्नान के पश्चात दोनों भाई गुरुदेव को प्रणाम करने पहुँचे। आशीर्वाद देते हुए महर्षि ने कहा कि मुझे पूजा के लिए कुछ फूलों की आवश्यकता है।

दोनों भाई जाने को उद्यत हुए।

महर्षि ने दोनों को निर्देश देते हुए कहा, 'यह नगर पुष्प वाटिकाओं से भरा हुआ है किन्तु उस वीथिका के पार एक पुष्प वाटिका है, वहीं जाकर फूल ले आओ किन्तु इस बात का ध्यान रखना कि पुष्पवाटिका के संरक्षक की अनुमति लेकर ही फूल तोड़ना है। पूजा के फूल के लिए वह मना नहीं करेगा किन्तु मनमानी नहीं करने देगा। यहाँ के लोग अत्यन्त विनम्र हैं किन्तु अनुशासित हैं। डाल, पत्ती या फूल; अकारण कोई नहीं तोड़ सकता। वाटिका में प्रवेश के लिए भी संरक्षक की अनुमति लेना आवश्यक है।

राम-लक्ष्मण पुष्प वाटिका के द्वार पर पहुँचे। राम ने द्वार-रक्षक से अनुरोध किया, 'हमलोग महर्षि विश्वामित्र के साथ धनुष यज्ञ देखने आये हैं। उन्हें

पूजा के लिए कुछ फूल चाहिए। क्या हम लोग वाटिका से कुछ फूल तोड़ सकते हैं?'

तोड़ सकते हैं ऋषिकुमार, किन्तु केवल उन्हीं फूलों को तोड़ेंगे जो पूरी तरह प्रस्फुटित होकर मुरझाने के करीब हैं। ऐसे फूलों को हाथ नहीं लगायेंगे जो प्रस्फुटन की प्रक्रिया में हैं। दूसरी बात है कि वाटिका के मध्य में भवानी का मन्दिर है, आप लोग मन्दिर के भीतर जाने का प्रयास नहीं करेंगे।'

'क्यों, मंदिर में जाने से क्या असुविधा होगी' लक्ष्मण ने सहज भाव से पूछा।

'ऋषिकुमार, आज जनक नन्दिनी सीता का स्वयंवर आयोजित है। वह भवानी की विशेष पूजा अर्चना के लिए आने वाली हैं; इसलिए आप लोग मन्दिर के निकट नहीं जायेंगे।'

राम-लक्ष्मण, वाटिका के भीतर पहुँचे। वाटिका के अनुपम सौन्दर्य को देखकर दोनों चकित थे। ऐसा लगता था जैसे प्रकृति ने अपना सम्पूर्ण सौन्दर्य इस वाटिका में बिखेर दिया है। रंग-विरंगे फूलों की क्यारियाँ, कतारों में सजे हुए पौधे, छायादार वृक्षों की झूमती हुई डालियाँ, लघु सरोवरों में क्रीड़ा करते पक्षी मन को मोहे जा रहे थें...।

अचानक द्वार रक्षक दौड़ता हुआ पहुँचा। ऋषि कुमार! आप लोग शीघ्रता करें। पूजा के लिए जनकनन्दिनी अपनी सहेलियों के साथ पहुँच गई हैं।

राम ने पूजा का थाल लिए, पीले वस्त्रों में अनुपम सौन्दर्य बिखेरती सीता को देखा जो अपनी सहेलियों के साथ धीरे धीरे भवानी मन्दिर की ओर बढ़ रही थी। अचानक सीता की एक सहेली का स्वर उभरा, 'अरे वह देखो कोसल नरेश दशरथ के पुत्र राम और लक्ष्मण वाटिका में फूल तोड़ रहे हैं। कल सायंकाल मैंने मुनि विश्वामित्र के साथ इनको नगर भ्रमण करते देखा था।'

सीता की निगाह राम पर पड़ी, 'तो यही राम हैं, जिनके साहस, शौर्य एवं यश-कीर्ति की चर्चा पिताश्री माता सुनयना से कर रहे थे'। सीता के मुखमण्डल पर किंचित लज्जा का भाव आया और दोनों हाथ माँ भवानी के सामने जुड़ गये।

लक्ष्मण मंत्रमुग्ध थे। सीता को देखकर आँखें तृप्त नहीं हो रही थीं। फूलों को तोड़ने के क्रम में वे रह-रहकर सीता को एक बार और देख लेने का लोभ संवरण नहीं कर पा रहे थे।

राम और लक्ष्मण, सीता का अनुपम और अतुलनीय सौन्दर्य देखकर चकित थे।

आम्र वाटिका में पहुँचते ही लक्ष्मण बोल उठे, 'मुनिवर पुष्पवाटिका में हमलोगों ने जनकनन्दिनी सीता को देखा। स्वयंवर में जाने के पूर्व वे पुष्पवाटिका स्थित भवानी मन्दिर में पूजा-अर्चना के लिए आईं थीं।

'हाँ पुत्र, जनक के कुल में किसी भी शुभ कार्य के पूर्व माँ भवानी की पूजा अर्चना का विधान है।'

'और सीता! क्या सीता ने भी तुमलोगों को देखा।'

'हाँ गुरूदेव, उनकी एक सहेली हमलोगों को इंगित कर परिचय दे रही थी। कल सायंकाल नगर भ्रमण के समय उसने हमलोगों को देखा था।'

मुनि को इतने से संतोष नहीं हुआ। वे राम की स्पष्ट प्रतिक्रिया जानने को इच्छुक थे।

'पुत्र राम, क्या तुमने जनकनन्दिनी सीता को देखा?'

'हाँ गुरूदेव, अत्यन्त सौम्य और सुन्दर हैं।'

इच्छित वस्तु को पाने की ललक स्वाभाविक होती है। लक्ष्मण पूछ बैठे, 'गुरुदेव इस स्वयंवर में कौन-कौन लोग आयेंगे?'

'लक्ष्मण, इस स्वयंवर में भाग लेने के लिए राजा जनक ने देश-विदेश के वीरजनों को आमंत्रित किया है। मनुष्य के रूप में देवगण भी इसमें भाग लेंगे।'

लक्ष्मण कुछ और पूछना चाहते थे किन्तु मुनि ने राम लक्ष्मण के हाथ से पुष्प लेकर पूजा सम्पन्न की।

[3]

सीता के मन में राम की स्पष्ट आकृति बन चुकी थी। कल सायं

नगर भ्रमण के बाद से ही जैसे पूरा नगर राममय हो गया है। सखी प्रियंवदा तो जैसे राम की दीवानी हो गई है। कल बता रही थी कि कोसल के वही राजकुमार राम है जिन्होंने सिद्धाश्रम में राक्षसों का नाश कर महर्षि विश्वामित्र के यज्ञ की रक्षा की। राक्षसों द्वारा अपहृत युवतियों को उनसे मुक्त कराकर उनको अभयदान प्रदान किया। इन्द्र द्वारा पीड़ित अहिल्या को जिसे पूरे समाज ने कलंकित घोषित कर अभिशप्त जीवन जीने के लिए बाध्य किया, आर्यावर्त के किसी सम्राट ने इन्द्र के भय से उद्धार के लिए साहस नहीं किया उस अहिल्या को न केवल निष्कलंक घोषित किया, उनका आतिथ्य स्वीकार किया बल्कि उनको पति और पुत्र के पास निरापद पहुँचा दिया।

पिताश्री आम्रकुँज में जब से राम को देखे हैं, उनका मन जैसे राम में ही अँटक गया है। कल माता सुनयना को बता रहे थे कि अपनी पुत्री सीता के लिए उन्हें ऐसे ही राजकुमार की खोज थी। और आज तो उसने स्वयं देखा है राम को; सुन्दर, तेजस्वी, ईमानदार, निर्भीक, बड़ी बड़ी आँखें, साँवला आकर्षक रंग, मोहक मुस्कान, सब कुछ अद्‌भुत।

सीता को तो ऐसे ही पति की अभिलाषा है जो अन्याय के विरूद्ध संघर्षरत हो। यदि राम उसको पति के रूप में मिल जाते हैं तो उसके जीवन को दिशा मिल जायेगी। अज्ञात कुलशीला होने का कलंक तो वह भी ढो रही है। पिता उसके विवाह के लिए कितना संघर्ष कर रहे हैं? किन्तु बार बार उन्हें असफलता ही तो मिल रही है। अज्ञात कुलशीला जाति, गोत्र विहीन सीता को पत्नी बनाने के लिए तो प्रत्येक राजकुमार तैयार हैं किन्तु सीता को वह अपनी जाति और गोत्र नहीं देना चाहता है। कैसी विडम्वना है? क्या राम, सीता के संबंध में जानते हैं? और क्या राम सबकुछ जानकर सीता को पत्नी के रूप में स्वीकार कर सकेंगे? यदि मनसा, वाचा, कर्मणा वह सीता को पत्नी के रूप में स्वीकार करने को तैयार भी हो जाँय तो क्या शिव धनुष की प्रत्यंचा चढ़ाकर पिताश्री की प्रतिज्ञा को पूरा कर सकेंगे? जीवन के इस मोड़ पर आगे का रास्ता नहीं दिख रहा है। माँ भवानी मेरी रक्षा करें, भविष्य का पथ प्रशस्त करें।

'सीते, क्या सोच रही हो पुत्री, यज्ञशाला में चलने की तैयारी करो,

समय निकट आ गया है।' सीता के कक्ष में प्रवेश करते ही माँ सुनयना ने कहा।

सीता के सोच की लड़ी टूट गई। बोली, 'आप चिन्ता न करें माँ, मैं अभी तैयार हो जाती हूँ।'

[4]

पूजा करने के पश्चात राम लक्ष्मण के साथ महर्षि ने भोजन किया फिर सबको साथ लेकर राजा जनक द्वारा आयोजित धनुषयज्ञ देखने के लिए प्रस्थान किया।

यज्ञशाला को, जहाँ पर धनुषयज्ञ आयोजित था, आज आकर्षक ढंग से सजाया गया था। एक विशाल मंच पर बीच आँगन में शिव धनुष रखा गया था। मंच के आगे धनुष यज्ञ में भाग लेने वाले आमंत्रित राजकुमारों के बैठने के लिए और पीछे राजकुमारी सीता तथा परिवार की अन्य महिलाओं के लिए मंच बनाया गया था। पार्श्व में एक ओर जहाँ ऋषि, मुनियों, विशिष्ठजनों तथा स्वयं राजा जनक के लिए मंच बनाया गया था वहीं दूसरे पार्श्व में आमजन एवं दर्शकों के लिए विशाल प्रांगण की व्यवस्था की गई थी।

राम-लक्ष्मण को लेकर महर्षि निर्धारित समय पर यज्ञशाला पहुँच गये। महर्षि के साथ राम-लक्ष्मण को देखकर आम दर्शकों ने करतल ध्वनि से स्वागत किया। राजा जनक ने स्वयं खड़े होकर महर्षि का अभिवादन किया एवं सबसे ऊँचे एवं आकर्षक मंच पर महर्षि को बैठाया। महर्षि के पार्श्व में राम-लक्ष्मण तथा पीछे साथ के अन्य ऋषिगण यथास्थान बैठ गये।

शुभ समय पर राजकुमारी सीता ने माता सुनयना एवं अन्य सहेलियों के साथ यज्ञशाला में प्रवेश किया। दर्शक-दीर्घा बड़ी देर तक तालियों से गूँजती रही। सबकी आँखे सीता की ओर, चारो तरफ नीरवता, सभी मंत्र-मुग्ध, किन्तु सीता सहज, उल्लसित, नीची निगाहों के साथ निर्धारित मंच पर बैठ गईं।

उपयुक्त अवसर देखकर जनक उद्‌घोषणा के लिए खड़े हुए। सीता के नेत्र, किंचित लज्जा के साथ उठे, सामने राजकुमारों के मध्य किसी को खोजने

लगे किन्तु नेत्र सहम गये, वे तो कहीं नहीं दीखते। राजकुमारों के मध्य नहीं हैं तो फिर कहाँ है? क्या वे यहाँ नहीं आये? सीता सहसा व्याकुल हो उठीं। उनकी भटकी दृष्टि अचानक महर्षि विश्वामित्र के मंच की ओर गई और मन का संशय मिट गया। चेहरे पर किंचित लालिमा उतर आई, मन का उल्लास लौट आया, राम तो इधर ही देख रहे हैं, आँखों में स्नेह, उत्साह और उल्लास के भाव हैं। सीता की आँखें तृप्त हो गई, मन सहज हो गया।

राजा जनक ने सीता विवाह की शर्ते बतायी और आमंत्रित राजकुमारों से अपने को, शर्तों के अनुकूल सिद्ध करने के लिए आमंत्रित किया और प्रारम्भ हो गयी अपने को साधने और सिद्ध करने की प्रक्रिया। एक प्रत्याशी खड़ा होता, शौर्य प्रदर्शन के लिए हुँकार भरता, उल्लसित होकर शिव-धनुष के पास जाता, पूरी ताकत से शिव-धनुष को उठाने का प्रयास करता, किन्तु शिव-धनुष उठाने की बात तो दूर की थी, वह तिल भर भी अपनी जगह नहीं छोड़ता और प्रत्याशी मुँह लटकाए, आँखें नीची किए हुए अपनी जगह पर आ बैठता। हताश, निराश सभी प्रत्याशी अपनी अपनी जगह पर बैठ गये। समारोह में उपस्थित जनसमूह का उत्साह निराशा में बदल गया। चेहरे भावशून्य हो गये। सर्वत्र लोग चर्चा में लीन हो गये, क्या जनकनन्दिनी सीता क्वँारी ही रह जायेंगी। लोग जनक को कोसने लगे, भला ऐसी भी प्रतिज्ञा करनी चाहिए, जिसे कोई पूरा ही नहीं कर सके।

नगर की महिलाओं और सीता की सहेलियों की आँखें सजल हो गईं, पता नहीं हमारी सीता के भाग्य में क्या बदा है। सभी निरीह और कातर दृष्टि से सीता की ओर देखने लगे जैसे सीता ने कोई अपराध किया हो। और सीता के मुखमण्डल पर तो जैसे प्रसन्नता थी। उसका तो अभीष्ट ही यही था कि धनुष किसी अन्य राजकुमार से न हिले। हिले तो बस राम से। उसकी निगाहें राम की ओर गईं, जैसे पूछ रही हों कि तुम क्यों नहीं आगे बढ़ रहे हो?

सहसा जनक खड़े हुए। निराशा के द्वन्द्व और पीड़ा के भार से, उनका सदैव दीप्त रहने वाला चेहरा मुरझा गया था। पुत्री के विवाह की चिन्ता से सामान्य गृहस्थ जीवन में रहने वाले व्यक्ति को कौन कहे, आज योगी और दुनिया से असंतृप्त रहने वाले जनक भी आन्तरिक पीड़ा से दग्ध दीख रहे थे, मानों धनुष

यज्ञ की प्रतिज्ञा से सीता के भविष्य को बाँधकर उन्होंने अक्षम्य अपराध किया है।

यज्ञशाला में उपस्थित सबकी निगाहें जनक की ओर उठ गई, सभी सहम गये, समय जैसे ठहर गया। विचलित ऋषि के पीड़ा के शब्दों को सुनने के लिए आमजन बेचैन हो उठा।

'मैं जनक, अपनी पुत्री सीता और यहाँ उपस्थित जनसमुदाय के समक्ष अपने को अपमानित और लज्जित अनुभव कर रहा हूँ। मैं नही जानता था कि यह पूरा आर्यावर्त वीर विहीन हो गया है, आज पृथ्वी पर एक भी बहादुर और पराक्रमी नहीं बचा है जो शिव के इस धनुष की प्रत्यांचा तक चढ़ा सके। अगर मैं जानता...

लक्ष्मण संयम खो बैठे, आँखें लाल हो उठीं, क्रोध से तमतमाते वे सहसा अपना मंच छोड़कर दौड़ते हुए राजा जनक के समक्ष उपस्थित हो गये।

'महाराज जनक अपना प्रलाप बन्द कीजिए। इस पृथ्वी पर जब तक राम हैं, इसे वीर विहीन कहने का साहस आपने कैसे किया?

आमजन अवाक् रह गया। इस अल्प आयु के वाचाल लड़के ने महाराज जनक से वाद-विवाद करने का साहस कैसे कर लिया, किन्तु राजा जनक को तो जैसे प्राण-वायु मिल गया, लक्ष्मण के क्रोध के बोल उन्हें अमृतवाणी की तरह लगे। वे अतृप्त आँखों से उसे देख रहे थे, जैसे कह रहे हो कि कहाँ है तुम्हारे राम? सामने क्यों नहीं आ रहे हैं?

महर्षि विश्वामित्र, जनक की चिन्ता और दुविधा को समझ रहे थे। वे जनक और लक्ष्मण के बीच हो रही वार्त्ताओं के बीच ही बोल उठे, 'उठो राम! महाराज जनक की चिन्ता को दूर करो।'

राम अपने आसन से उठे। धीर, गम्भीर, चेहरे पर वही चिर-परिचित मुस्कान थी। कार्य की गुरुता का ज्ञान था किन्तु सहज दिख रहे थे। उन्होंने गुरू विश्वामित्र का चरण स्पर्श कर आशीर्वाद प्राप्त किया। तत्पश्चात दोनों हाथ जोड़कर चारों ओर दृष्टि घुमाकर पूरे जनसमुदाय को समवेत प्रणाम किया। फिर स्नेह भरी आँखों से सीता को देखा, ऐसा लगा जैसे सीता की आँखें उलाहना दे रही हों। पूरे जनसमुदाय की साँसें रुक गईं किन्तु मन में दुआ की कामना थी।

असफल और कुँठित राजकुमार विस्फारित नेत्रों से राम की क्षमता का आकलन कर रहे थे, वे भ्रमित थे कि यह नवयुवक ऋषिकुमार है अथवा राजकुमार? राजा जनक का मुखमण्डल आशा की नई किरण से उद्दीप्त हो उठा।

संशय और द्वन्द्व से मुक्त राम सहज भाव से शिव-धनुष की ओर बढ़े। मंच पर पहुँचकर राम ने हाथ जोड़कर शिव का स्मरण किया मानों महादेव से धनुष तोड़ने की आज्ञा प्राप्त कर रहे हों। उन्होंने धनुष का निरीक्षण किया। सभी अवरोधक वहीं थे जहाँ गुरूदेव ने बताया था। राम झुके, पहले और दूसरे अवरोधकों को सीखी विधि से हटाया और धनुष को सहज ढंग से ऐसे उठाया जैसे कोई अत्यन्त साधारण धनुष हो। आमजन की रुकी साँसे चलने लगी, करतल ध्वनि से सभी दिशायें गुँजायमान हो उठीं। विस्फारित नेत्रों में नई ज्योति आ गई।

तीसरा अवरोधक जड़ता की स्थिति में था, बिल्कुल स्थिर एवं अपरिवर्तनीय, जैसे राम से कह रहा हो कि मुझे गतिशील करो, तभी तुम्हारे पौरुष को स्वीकार करूँगा। लोगों की साँसें फिर रुक गईं। राम ने महादेव को पुनः नमन किया और अपनी सम्पूर्ण शक्ति का अपनी बाँहों में आह्वान किया। फिर नये सिरे से प्रयास, शरीर की सभी माँसपेशियाँ क्रमशः कठोर होती गई, मुखमण्डल रक्ताभ हो उठा, आँखें जैसे अपनी कोटरों से बाहर निकलने को बेचैन हो उठीं। और सबने देखा, महाबली राम ने अपने ज्ञान, कौशल और पराक्रम से तीसरे अवरोधक को इच्छित दिशा में मोड़ दिया। राम धनुष की प्रत्यांचा चढ़ाने को उद्यत हुए किन्तु यह क्या, प्रत्यांचा पूरी चढ़ भी नहीं पाई और भयंकर ध्वनि करता धनुष बीच से ही टूट गया।

अभूतपूर्व दृश्य था। जनसमुदाय आश्चर्य एवं उल्लास के अतिरेक से उछल पड़ा, करतल ध्वनि से दिशायें फिर गूँज उठीं। कार्य की पूर्णता से पुलकित महर्षि भी अपने स्थान पर खड़े हो गये। राजा जनक की आँखें हर्षातिरेक से विह्वल हो उठी जैसे उन्होंने अपना खोया साम्राज्य और खोयी प्रतिष्ठा पुनः अर्जित कर ली हो। अपना आसन छोड़कर वे वेग से राम के पास पहुँचे और राम को बाँहों में भर लिया। साधु, संन्यासी एवं समस्त मुनिगण सुखद आश्चर्य से जड़ हो गये।

...और माता सुनयना, जिनकी आँखों में जीवन के टूटते सपनों का

रुदन था, अब उनमें प्रसन्नता के अतिरेक से आँसुओं की धार थामें नहीं थम रही थी। सीता अब राम की थी और राम सीता के। आँखों में भर आये आँसुओं को छिपाने के लिए सीता ने पास बैठी माता सुनयना के आँचल में चेहरा छिपा लिया।

राजपुरोहित और आचार्यगणों के मंत्रोचार के बीच सीता ने राम के गले में वर-माला डाल दी। मंगल गीत से दिशायें गुँजायमान हो उठीं। पुलकित जनकपुरवासियों के जीवन में जैसे नया सवेरा आ गया।

अचानक यज्ञशाला में महर्षि परशुराम ने प्रवेश किया। अपने गुरू महादेव शिव के धनुष को दो भागों में टूटा हुआ देखकर उनके क्रोध की सीमा नहीं रही। अपना आपा खोते हुए उन्होंने जनक से पूछा, 'महादेव शिव के दुर्लभ पिनाक को तोड़ने की हिम्मत किसने की, उस दुस्साहसी को मैं दण्डित करूँगा।'

कुछ नरपतियों को छोड़कर जो राम के पौरुष और नायकत्व से ईर्ष्या करने लगे थे, शेष जनसमुदाय ने परशुराम के इस कृत्य को रंग में भंग के रूप में देखा। लोग आशंकित युद्ध से घबड़ा गये।

लक्ष्मण अपने क्रोध को दबा न सके। वे अपने स्थान से उठे और परशुराम के समक्ष उपस्थित हो गये, फिर ऊँची आवाज में गरज उठे 'मान्यवर, महाराज जनक ने अपनी पुत्री के विवाह के लिए इस पिनांक की प्रत्यांचा चढ़ाने की शर्त रखी थी और राजकुमार राम ने इसकी प्रत्यांचा चढ़ाने का प्रयास किया तो यह पुराना पिनाक स्वयं टूटकर दो टुकड़ों में विभक्त हो गया। आप बताइये महर्षि, इसमें किसी का क्या दोष है?'

'वाचाल लड़के, महादेव शिव के जिस धनुष को देव, दानव और मानव आज तक हिला नहीं सके उसे तुम पुराना धनुष कहकर उसका उपहास कर रहे हो? तुम्हें मैं अभी दण्डित करूँगा।' तिलमिलाये परशुराम का फरसा हाथों में आ गया।

'महर्षि अपना फरसा मत दिखाइये, मेरे हाथ में भी धनुषवाण है, कहीं मुझसे अपराध न हो जाय। वैसे जिस पिनांक पर आपको गर्व है, वैसे पिनांक को लेकर तो राम योजन भर दौड़ सकते हैं।

परशुराम अपना धैर्य खो बैठे। वे लक्ष्मण को दण्डित करने के लिए

आगे बढ़े। तब तक महर्षि के साथ राम परशुराम के समक्ष उपस्थित हो गये। अत्यन्त विनम्र एवं शान्त होकर कहा, 'मैं दशरथ पुत्र राम भगवान परशुराम के चरणों में प्रणाम करता हूँ'। राम साष्टांग परशुराम के चरणों में झुक गये, फिर विनम्रता से बोले, 'महर्षि यह मेरा अनुज लक्ष्मण है, यह अभी अल्प आयु का है, इसने आपको पहचाना नहीं देव, इसे क्षमा करें।'

राम की शिष्टता और विनम्रता से परशुराम अत्यन्त प्रभावित हुए। क्रोध का उबाल शान्त हुआ। मन का भ्रम दूर होने लगा। अपना संशय हटाने हेतु परशुराम ने अपना विशिष्ठ धनुष देकर राम के सामर्थ्य को परखना चाहा किन्तु राम ने उसे ऐसे ग्रहण किया मानों धनुष को ही राम के हाथ में जाने की प्रतीक्षा थी। परशुराम के मन का संशय समाप्त हुआ और उन्होंने प्रसन्नतापूर्वक राम को बधाई दी, मन को आश्वस्त किया, युग-पुरुष के आगमन का मन ही मन स्वागत किया और सबसे विदा ले ली।

राजा जनक परशुराम की ही प्रतीक्षा कर रहे थे। वे चाहते थे कि आज का युग-पुरुष, कल के युग-पुरुष को मान्यता प्रदान कर दे, अपना उत्तराधिकार सौंप दे। जनक को यह भान था कि जिस युगनायक का वे अन्वेषण कर रहे थे, उसे बिना परशुराम की मान्यता के आर्यावर्त का जनसमुदाय स्वीकार नहीं करेगा, उनकी खोज अधूरी रह जायेगी।

अब परशुराम द्वारा समर्थित राम के नायकत्व को मान्यता मिल गई। उपस्थित लोगों द्वारा पूरे आर्यावर्त में यह संदेश जायेगा। बिखरे आर्यावर्त को एकसूत्र में बाँधने के लिए जिस नायक के अन्वेषण की जिम्मेदारी उन्हें मिली थी, वह अब पूरी हो गई।

[5]

पुत्र राम! तुम्हें अयोध्या से लाने का मेरा अभीष्ट पूरा हुआ। तुम्हारे नायकत्व को प्रतिष्ठित होते देख मेरे मन को तृप्ति मिल रही है। अब मैं अपने मूल आश्रम में लौट जाना चाहता हूँ। आर्यावर्त की एकता, आर्य संस्कृति का

सम्यक विकास और अन्याय के प्रतिकार का लक्ष्य तुम्हारे नायकत्व की कसौटी है। आर्यावर्त का यह जड़ समाज चेतन और स्पन्दित होने का बाट खोज रहा है। छीजते जीवन-मूल्य पुनर्स्थापन की अपेक्षा कर रहे हैं।

पुत्र! अब मैं युगनायक, महाबली राम को नये मूल्यों को प्रस्थापित करने के लिए अकेला छोड़ रहा हूँ।

राम विह्वल हो उठे। आँखें भर आईं। 'गुरूदेव! माता-पिता ने तो मुझे जन्म दिया है किन्तु, आपने तो मुझे सँवारकर जीवन का अनुपम लक्ष्य दे दिया'। और राम गुरु-चरणों से लिपट गये।

X X X X

...और राम का नायकत्व, राम के स्थापित जीवन-मूल्य, युग-युगान्तर की यात्रा के बाद भी अपना मूल्य नहीं खोये। युग बदला, युग-धर्म बदला, स्थितियाँ बदलीं, जन बदले, जनलोक बदला, किन्तु 'राम' के मूल्य नहीं बदले। 'विश्वामित्र के राम' युग-युगान्तर के शाश्वत प्रतीक बन गये।

X X X X